RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20/प्रकाशन तिथि 26 नवम्बर 2018

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका दिसम्बर 2018

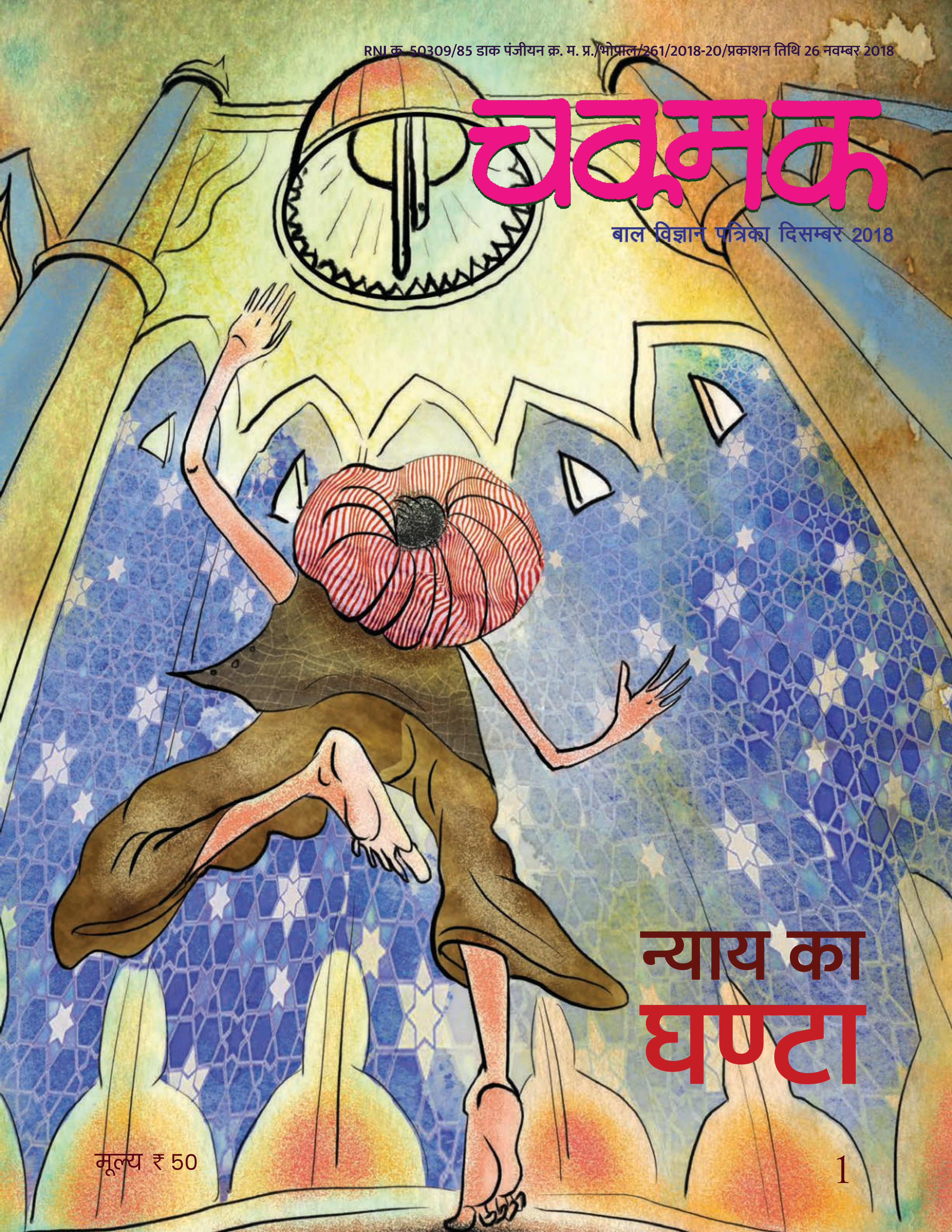

न्याय का घण्टा

मूल्य ₹ 50

- काम पर लेट से पहुँचने पर गेट से भगा दिया जाता है।
- बोनस बहुत कम दिया जाता है।
- एक ही कम्पनी में किसी को तीन दिन की छुट्टी दी जाती है तो किसी-किसी को कोई छुट्टी ही नहीं मिलती।
- कभी-कभी महिलाओं से देर रात तक काम कराया जाता है।
- किसी-किसी कम्पनी में तो कोई छुट्टी नहीं मिलती। तबियत खराब होने पर भी काम पर जाना पड़ता है।
- कोई मज़दूर अगर किसी काम से छुट्टी पर हो तो उस छुट्टी के बदले उस मज़दूर को दुगुने घण्टे काम करना पड़ता है।
- कम्पनी के ठेकेदार अपने हिसाब से मज़दूरों को काम देते हैं। और कोई भी काम करवाते हैं।
- मज़दूरों को ज़्यादातर दिनभर खड़े रहकर काम करना पड़ता है।
- उन्हें कम्पनी की तरफ से कोई सुविधा नहीं दी जाती।
- कारखाने के अन्दर काम करते समय मशीनों से जो गन्दी बदबू, धुआँ और धूल निकलती है उससे शरीर को बहुत नुकसान होता है। इससे बचाव के लिए कम्पनी की तरफ से कोई सुविधा नहीं दी जाती।

शहीद स्कूल, रायपुर के औद्योगिक क्षेत्र में स्थित मज़दूर संगठन का स्कूल है। वहाँ के बच्चों के माँ-बाप ज़्यादातर आसपास की फैक्ट्रियों में काम करते हैं। उनके जीवन को बेहतर समझने के लिए बच्चों ने बहुत सारे मम्मी-पापा को क्लास में बुलाकर उनका इंटरव्यू लिया। उन्होंने जो समझा उसकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है।

मज़दूरों के जीवन में क्या-क्या दिक्कतें आती हैं?

कक्षा 3 और 4 के बच्चे, शहीद स्कूल, रायपुर, छत्तीसगढ़

आवरण चित्र: तनुश्री रॉय पॉल

अंक 387 दिसम्बर 2018

चकमक

इस बार

मज़दूरों के जीवन में... - शहीद स्कूल 2
न्याय का घण्टा - मनोज राज लाली 4
तुम भी जानो 6
सियाचिन - सुधेश उण्णीरामन 8
तेन्दुआ और बन्दर - सुशील शुक्ल 12
चिड़चिड़ाहट - शादाब आलम 14
इन्सानियत का बँटवारा - रुबीना खान 15
क्षिप्रा नदी - अंजना त्रिवेदी 18
अरी! अरी! बकरी - निरंकारदेव सेवक 20
एक उलटी चलनी 21
अपना रास्ता ढूँढना... - नेचर कॉन्ज़र्वेशन फाउण्डेशन 22
अगर - सजिता नायर 24
तुम भी बनाओ 26
तोते सोच-समझकर औज़ार बनाते हैं 28
बूँद-बूँद टपकनेवाली जगह - विनोद कुमार शुक्ल 29
मेरा पन्ना 33
भूलभुलैया 39
गौरैया और मनुष्य का साथ कैसे हुआ? 40
माथापच्ची 41
चित्रपहेली 43
छोटा बच्चा - जशनप्रीत सिंह 44

सम्पादन
विनता विश्वनाथन

डिज़ाइन
कनक शशि

सम्पादकीय सहयोग
कविता तिवारी
सजिता नायर
गुल सारिका झा

सलाहकार
सी एन सुब्रह्मण्यम्
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

एक प्रति : ₹ 50
वार्षिक : ₹ 500
तीन साल : ₹ 1350
आजीवन : ₹ 6000
सभी डाक खर्च हम देंगे

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चेक से भेज सकते हैं। एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण:
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म. प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
email - chakmak@eklavya.in, circulation@eklavya.in; www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

न्याय का घण्टा

मनोज राज लाली
चित्र: तनुश्री रॉय पॉल

पहले के नवाब और सम्राट बहुत ही नेकदिल हुआ करते थे। वे रिआया की भलाई के लिए हमेशा ही परेशान रहते थे। कुछ ने रिआया को न्याय देने के लिए घण्टे लगा रखे थे, तो कुछ ने दरबार-ए-आम। शायद तभी से घण्टे का क्रेज़ बहुत बढ़ गया, जो जहाँ घण्टा बँधा देखता था, वहीं उसे बजाना शुरू कर देता। तब भी घण्टे मन्दिरों के दरवाज़े पर लगाए जाते थे और आज भी। सदियाँ बीत गईं, लेकिन न्याय के घण्टे की जगह नहीं बदली।

एक बार एक ज़मींदार के सताए हुए गाँव के बहुत सारे लोग न्याय पाने की आशा में सम्राट के दरबार की ओर चले घण्टा बजाने। गाँव से सम्राट का महल बहुत ही दूर था। आधे से अधिक लोग निराश होकर रास्ते से ही लौट आए। कुछ भूख-प्यास से मर गए। सिर्फ एक आदमी महल तक पहुँच पाया। वहाँ उसने एक सिपाही से पूछा कि न्याय का घण्टा किधर है?

उसको देखकर सिपाही मुस्कराया और रास्ता बता दिया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि एक बहुत बड़ा घण्टा लटक रहा था। वह घण्टा बजाने के लिए आगे बढ़ा। नज़दीक जाकर देखा तो घण्टे में रस्सी लगी ही नहीं थी जिसे पकड़कर घण्टा बजाया जा सके। वह लगा कूद-कूदकर घण्टा बजाने की कोशिश करने, पर घण्टे की ऊँचाई अधिक होने के कारण वह सफल नहीं हुआ।

परेशान होकर उसने पास खड़े सिपाही से पूछा, “यह कैसा न्याय का घण्टा है? इसमें तो रस्सी ही नहीं लगाई गई है। प्रचार तो किया गया था कि अब सबको न्याय मिलेगा।” सिपाही ने कहा, “सम्राट का काम घण्टा लगाना है, उसमें रस्सी नहीं...।” आदमी बोला “यह तो हमारे साथ धोखा है। हम इसकी शिकायत जहाँपनाह से करेंगे।”

सिपाही बोला, “अरे पागल! सम्राट की आज्ञा से ही इसमें रस्सी नहीं लगाई गई है।” आदमी बोला, “तब तो कोई भी न्याय नहीं पाता होगा?” सिपाही बोला, “नहीं रे पगले! समझदार लोग हमेशा न्याय पाते हैं।” आदमी ने पूछा, “वो कैसे... क्या कोई इतना भी लम्बा हो सकता है कि वो इस घण्टे को बिना रस्सी के ही बजा सके?”

सिपाही ने बताया, “नहीं रे! जो समझदार हैं वो घर से ही सीढ़ी लेकर चलते हैं या फिर यहाँ पर हमसे किराये पर ले लेते हैं।” आदमी ने सिपाही से पूछा, “सीढ़ी का किराया कितना है?”

सिपाही बोला, “दस स्वर्ण मुद्राएँ, अगर तुम्हारे पास हों तो मैं तुरन्त सीढ़ी का इन्तज़ाम कर सकता हूँ।” आदमी बोला, “लेकिन मेरे पास तो सिर्फ एक ताम्बे का सिक्का है।”

“जेब में पैसा नहीं और चले आए न्याय लेने। न्याय कोई कुत्ते को फेंके जाने वाली रोटी नहीं है कि सबको मुफ्त में दे दिया जाए।” सिपाही की बात सुनकर आदमी निराश होकर लौट गया।

बाद के शासक उस शहंशाह की न्याय की इस व्यवस्था से इतने प्रभावित हुए, कि यही न्याय व्यवस्था आधुनिक युग में भी अपनाई जाने लगी। जगह-जगह पर घण्टे लगाए गए, पर रस्सी कहीं पर भी नहीं लटकाई गई।

तुम भी जानो

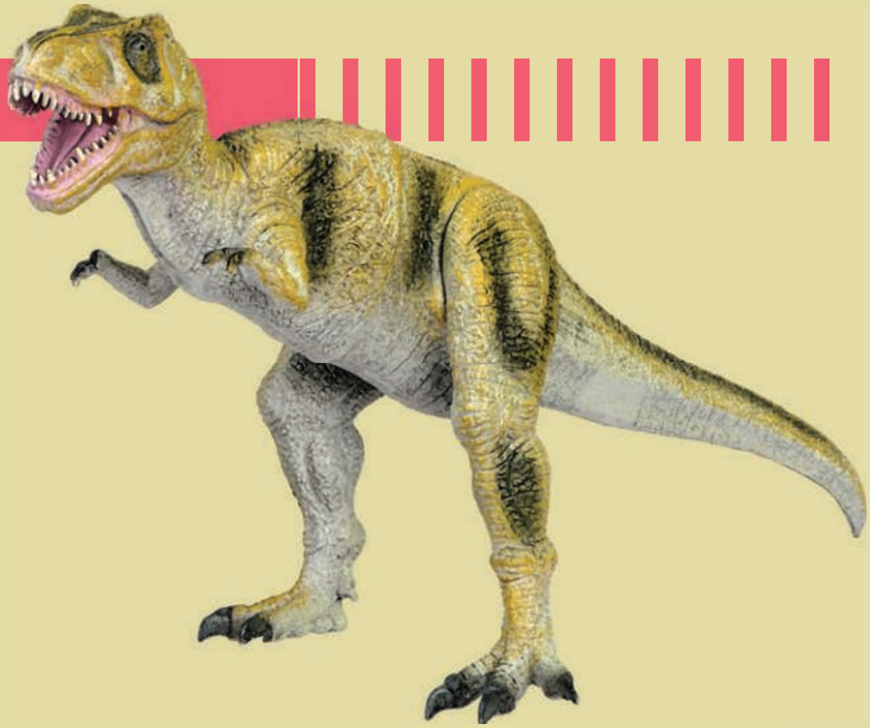

जुरासिक पार्क देखकर शायद तुम्हें लगा होगा कि डायनोसौर विदेश में ही पाए जाते थे। 25 से 6 करोड़ साल पहले तक हमारे इलाके में भी कई डायनोसौर रहते थे। 25-30 किस्म के डायनोसौर के जीवाश्म (हड्डियों और अण्डों के भी) राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, तेलंगाना से मिले हैं। डेढ़ फुट लम्बे दो किलो वज़न के छोटे डायनोसौर से लेकर 35 मीटर व 200 टन के डायनोसौर रहे हैं यहाँ। इनकी खोज करने वालों ने इनके नाम राजसौरस, जैनोसौरस, प्रधानिया इत्यादि रखे हैं।

मार्वल का हरे रंग का विशालकाय शरीर वाला लोकप्रिय पात्र और हीरो 'हल्क' तो तुम्हें मालूम ही होगा। पर क्या तुम्हें पता है कि हल्क के रचनाकार स्टेन ली ने हल्क को पहले ग्रे रंग का बनाया था। हल्क कॉमिक के पहले अंक में आपको ग्रे हल्क दिखेगा पर अचानक से दूसरे अंक में वह अपने जाने-माने हरे रंग में दिखेगा। छपाई के दौरान ग्रे रंग को बनाए रखने में मुश्किल आने की वजह से लोगों को बिना कुछ कहे स्टेन ली और मार्वल की टीम ने हल्क का रंग बदलकर हरा कर दिया।

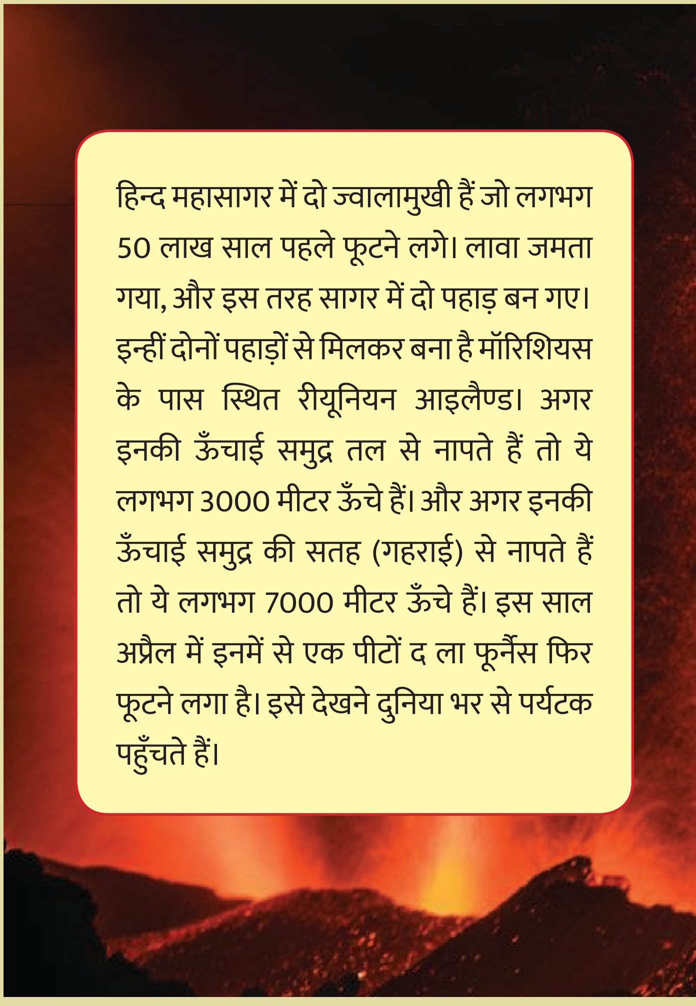

हिन्द महासागर में दो ज्वालामुखी हैं जो लगभग 50 लाख साल पहले फूटने लगे। लावा जमता गया, और इस तरह सागर में दो पहाड़ बन गए। इन्हीं दोनों पहाड़ों से मिलकर बना है मॉरिशियस के पास स्थित रीयूनियन आइलैण्ड। अगर इनकी ऊँचाई समुद्र तल से नापते हैं तो ये लगभग 3000 मीटर ऊँचे हैं। और अगर इनकी ऊँचाई समुद्र की सतह (गहराई) से नापते हैं तो ये लगभग 7000 मीटर ऊँचे हैं। इस साल अप्रैल में इनमें से एक पीटों द ला फूर्नैस फिर फूटने लगा है। इसे देखने दुनिया भर से पर्यटक पहुँचते हैं।

दुनिया की पहली अलार्म बजाने वाली घड़ी 1787 में अमेरिका के लावाई हचिन्स ने बनाई। उनकी यह घड़ी सुबह के चार बजे उन्हें उठा देती थी। 60 साल लग गए ऐसी घड़ियों को बनाने में जिन्हें किसी भी समय अलार्म बजाने के लिए सेट किया जा सकता था। इसे फ्रांस में आन्टुआन रेडिए ने बनाया था। खैर!

चुटकुले

चित्र: रिया पटेल

सियाचिन

बर्फ से ढँकी एक दुनिया

सुधेश उण्णीरामन

दुनिया के सबसे ऊँचे और ठण्डे युद्ध क्षेत्र सियाचिन के बारे में हम कभी-कभी खबरों में पढ़ते हैं या देखते हैं। यह भारतीय सेना को तैनात किए जाने वाली सबसे कठिन जगहों में से एक मानी जाती है। क्या तुमने कभी सोचा है कि उन सैनिकों के लिए रोज़मर्रा की ज़िन्दगी अन्य जगहों पर रहने वाले लोगों की अपेक्षा कितनी अलग है? चलो, समझने की कोशिश करते हैं कि हमारी सेना असल में यहाँ किस तरह की लड़ाई लड़ती है।

सियाचिन का नाम यहाँ के हिमनद के नाम पर पड़ा है। यह दुनिया के सबसे लम्बे हिमनदों में से एक है। इस समूचे हिमनद पर चलोगे तो लगभग 70 किलोमीटर की दूरी तय करोगे। इतना ही नहीं, यह हिमनद अपने चारों तरफ लगभग 6 हज़ार मीटर के क्षेत्र में फैले पहाड़ों पर 3500 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। हिमनद धीमी गति से बहने वाली बर्फ की नदी होती है। हम अपनी नंगी आँखों से इसकी गति को नहीं देख सकते। यूँ देखने पर यह बर्फ के ढेर जैसी नज़र आती है। वैसे अगर तुम किसी हिमनद के ऊपर तम्बू लगाओगे, तो कुछ दिनों के बाद तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारा तम्बू हिमनद के मुहाने की तरफ कई मीटर आगे खिसक आया है। वहाँ से पिघलकर यह नदी बन जाती है। यहाँ एक और कठिनाई यह है कि हिमनद नीचे की तरफ बहती है और आसपास की बर्फ भी खिसकती है। इससे इस क्षेत्र में हिमस्खलन (avalanche) की सम्भावना बनने लगती है। खासतौर पर तब, जब अपने ही वज़न से नीचे की बर्फ टूटने-धसकने लगती है। यह बहुत ही खतरनाक होता है।

हिमनद की ऊँचाई के कारण कई अन्य कठिनाइयाँ भी होती हैं। इस ऊँचाई पर पेड़-पौधे नहीं होते। तापमान -55 डिग्री सेल्सियस से भी नीचे जा सकता है। सर्दियों में दिन का तापमान शायद ही कभी -10 डिग्री सेल्सियस रहता हो। किसी दिन हवाओं की रफ्तार 50 किलोमीटर प्रति घण्टे तक भी पहुँच सकती है। यहाँ हवा में ऑक्सीजन का स्तर भी बहुत कम होता है। जिस दिन आसमान साफ और हवाएँ हलकी हों, उस दिन सूर्य ज़्यादा गर्म हो सकता है और तुम्हारी त्वचा और आँखों को नुकसान पहुँचा सकता है। सूर्य की किरणें बर्फ से परावर्तित होती है, इसलिए दुगुनी रोशनी दिखती है। सैनिकों को दिन भर धूप का चश्मा पहनकर रहना पड़ता है।

इन तमाम चुनौतियों के कारण यहाँ रहना बहुत ही मुश्किलों से भरा है, यहाँ तक कि साधारण ज़िम्मेदारियों को निभाने में भी दिक्कतें आती हैं। देश की अन्य सीमाओं की

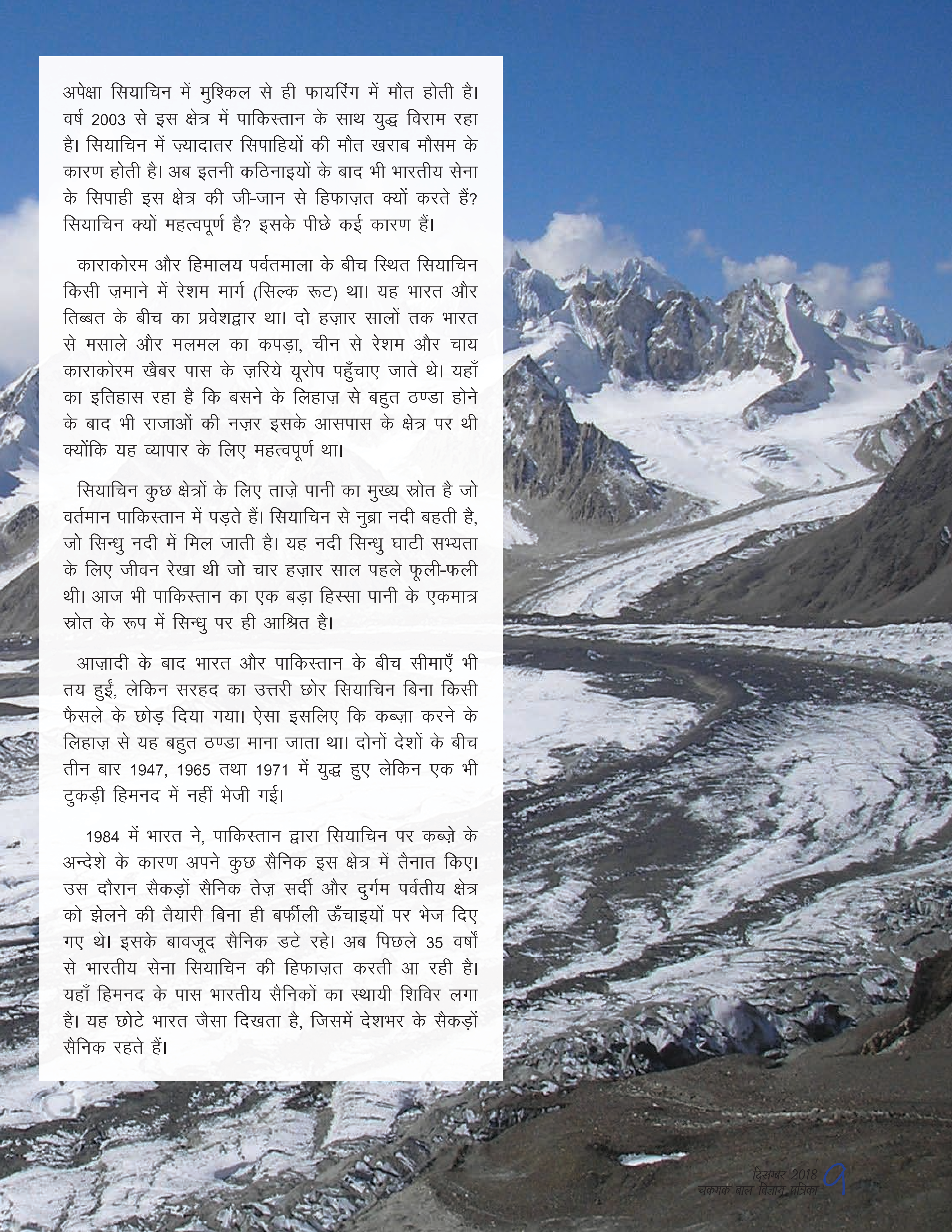

अपेक्षा सियाचिन में मुश्किल से ही फायरिंग में मौत होती है। वर्ष 2003 से इस क्षेत्र में पाकिस्तान के साथ युद्ध विराम रहा है। सियाचिन में ज़्यादातर सिपाहियों की मौत खराब मौसम के कारण होती है। अब इतनी कठिनाइयों के बाद भी भारतीय सेना के सिपाही इस क्षेत्र की जी-जान से हिफाज़त क्यों करते हैं? सियाचिन क्यों महत्वपूर्ण है? इसके पीछे कई कारण हैं।

काराकोरम और हिमालय पर्वतमाला के बीच स्थित सियाचिन किसी ज़माने में रेशम मार्ग (सिल्क रूट) था। यह भारत और तिब्बत के बीच का प्रवेशद्वार था। दो हज़ार सालों तक भारत से मसाले और मलमल का कपड़ा, चीन से रेशम और चाय काराकोरम खैबर पास के ज़रिये यूरोप पहुँचाए जाते थे। यहाँ का इतिहास रहा है कि बसने के लिहाज़ से बहुत ठण्डा होने के बाद भी राजाओं की नज़र इसके आसपास के क्षेत्र पर थी क्योंकि यह व्यापार के लिए महत्वपूर्ण था।

सियाचिन कुछ क्षेत्रों के लिए ताज़े पानी का मुख्य स्रोत है जो वर्तमान पाकिस्तान में पड़ते हैं। सियाचिन से नुब्रा नदी बहती है, जो सिन्धु नदी में मिल जाती है। यह नदी सिन्धु घाटी सभ्यता के लिए जीवन रेखा थी जो चार हज़ार साल पहले फूली-फली थी। आज भी पाकिस्तान का एक बड़ा हिस्सा पानी के एकमात्र स्रोत के रूप में सिन्धु पर ही आश्रित है।

आज़ादी के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच सीमाएँ भी तय हुईं, लेकिन सरहद का उत्तरी छोर सियाचिन बिना किसी फैसले के छोड़ दिया गया। ऐसा इसलिए कि कब्ज़ा करने के लिहाज़ से यह बहुत ठण्डा माना जाता था। दोनों देशों के बीच तीन बार 1947, 1965 तथा 1971 में युद्ध हुए लेकिन एक भी टुकड़ी हिमनद में नहीं भेजी गई।

1984 में भारत ने, पाकिस्तान द्वारा सियाचिन पर कब्ज़े के अन्देशे के कारण अपने कुछ सैनिक इस क्षेत्र में तैनात किए। उस दौरान सैकड़ों सैनिक तेज़ सर्दी और दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र को झेलने की तैयारी बिना ही बर्फीली ऊँचाइयों पर भेज दिए गए थे। इसके बावजूद सैनिक डटे रहे। अब पिछले 35 वर्षों से भारतीय सेना सियाचिन की हिफाज़त करती आ रही है। यहाँ हिमनद के पास भारतीय सैनिकों का स्थायी शिविर लगा है। यह छोटे भारत जैसा दिखता है, जिसमें देशभर के सैकड़ों सैनिक रहते हैं।

सियाचिन में तैनात हर सिपाही को कठोर प्रशिक्षण से होकर गुज़रना पड़ता है। यहाँ ऑक्सीजन के कम स्तर पर ज़िन्दा रहने की आदत डाली जाती है ताकि शरीर अपनी पूरी क्षमता से काम कर सके। इसके अलावा, यह इलाका भी उनके लिए नया और मुश्किलों से भरा होता है। मैदानों में चलने या दौड़ने की बजाय सैनिकों को चट्टानों, बर्फीले पहाड़ों और घाटियों पर खतरनाक चढ़ाई करनी पड़ती है। हर इलाके के लिए अलग हुनर और तकनीक की ज़रूरत पड़ती है। इसके लिए सैनिकों को अलग-अलग उप-करणों का उपयोग सीखना पड़ता है।

सैनिक हिमनद की सतह से फिसलकर दर्रों के बीच गिर सकते हैं, जहाँ बहुत तेज़ ठण्ड के कारण घण्टे भर में उनकी मौत हो सकती है। इसलिए प्रशिक्षण के दौरान बचाव अभियान और बीमार पड़ने पर साथी सैनिकों और अधिकारियों की मदद किस तरह करें, इस बात पर बहुत ध्यान दिया जाता है।

सैनिकों को यहाँ नियमित रूप से अपने स्वास्थ्य पर नज़र रखने के साथ ऊँचाई वाली जगह पर होने वाली बीमारियों से बचाव के तौर-तरीके भी सिखाए जाते हैं। जहाँ ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है, वहाँ अकसर परिश्रम के दौरान दिमाग में सूजन और दिल के दौरे का खतरा उत्पन्न हो जाता है। यहाँ की परिस्थिति के अनुसार भोजन का भी खास ख्याल रखना पड़ता है। अब चूँकि ऐसी जगह पर कई तरह के भोजन को पचाना कठिन होता है, इसलिए यहाँ रहने वाले सैनिक ज़्यादातर खिचड़ी खाते हैं। ऐसी परिस्थितियों के लिए वे पहले से पका पैकेट वाला भोजन भी अपने साथ रखते हैं,जिसे डीआरडीओ (रक्षा मंत्रालय का रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन) तैयार करता है। प्रशिक्षण का एक और ज़रूरी पहलू है उपकरणों का रखरखाव। तेज़ सर्दी में बहुत बढ़िया बन्दूकें भी खराब हो सकती हैं, स्टोव और तम्बुओं की अगर ठीक से देखभाल नहीं की गई तो वे बेकार हो सकते हैं। चीज़ों को बदलना आसानी से सम्भव नहीं होता इसलिए सैनिकों से उम्मीद की जाती हैं कि वे अपने उपकरणों की देखभाल और मरम्मत खुद ही कर लेंगे।

प्रशिक्षण का तरीका कुछ ऐसा रखा जाता है, जिससे सैनिक धीरे-धीरे अपने शरीर की क्षमताओं को बढ़ा सकें। प्रशिक्षण खत्म हो जाने के बाद सैनिकों को उनकी पोस्टिंग के बारे में बताया जाता है। पोस्टिंग की अवधि 60 से 90 दिनों के बीच हो सकती है। ये इस बात पर निर्भर करती है कि अपनी पोस्ट तक पहुँचने के लिए उन्हें कितनी दूर चलना पड़ेगा। जाने से पहले एक सभा आयोजित की जाती है, जिसमें ओ.पी. बाबा की मूर्ति से सैनिक ज़रूर प्रार्थना करते हैं। ओ.पी. बाबा एक सैनिक थे जिनकी ड्यूटी के दौरान बर्फ में दबकर मौत हो गई थी। प्रवास के दौरान वे सैनिकों के लिए ऐसे देवदूत माने जाते हैं जो बड़े-बुज़ुर्ग की तरह उनकी हिफाज़त करते हैं। जब वे अपनी पोस्टिंग वाली जगह पहुँच जाते हैं, तब पुराने तैनात सैनिकों के समूह से ज़िम्मेदारी लेते हैं और उन्हें अलविदा कहते हैं।

बेस कैम्प उन सैनिकों के सम्पर्क में रहता है। हिमनद और उसके चारों तरफ फैले पहाड़ों पर सैकड़ों पोस्ट हैं। हर दिन की मेडिकल रिपोर्ट से सैनिकों के स्वास्थ्य का ब्यौरा रखा जाता है। ज़रूरी सामान पहुँचाने के लिए और खराब चीज़ों को बदलने के लिए हर दिन हेलीकॉप्टर इस क्षेत्र में उड़ान भरते हैं। ऊब से बचने के लिए हर किसी को अलग-अलग तरह के कई काम दिए जाते हैं जैसे – चौकीदारी, उपकरणों की जाँच, कैम्प की रेडियो रिपोर्टिंग करना, खाना पकाना। काम इस तरह बाँटे जाते हैं, जिससे हर सैनिक को एक दिन में या सप्ताह में हर काम करने का मौका मिले।

सैनिकों से चलते-फिरते रहने के लिए कहा जाता है, ताकि उनका शरीर गर्म रहे। बहुत तेज़ ठण्ड में फ्रॉस्टबाईट (हिमदाह) का खतरा रहता है, इसमें हाथ-पैरों की उँगलियाँ गलने लगती हैं। हर दिन सैनिकों से हाथ-पैर जाँचने के लिए कहा जाता है, ताकि फ्रॉस्टबाईट के लक्षणों को जल्दी पहचाना जा सके। जिन लोगों को केबल जाँचने के लिए या अन्य पोस्ट पर तैनात लोगों तक सन्देश भेजने के लिए दूर भेजा जाता है उन्हें नियमित रूप से अपनी प्रगति रिपोर्ट भेजनी पड़ती है क्योंकि वे अथाह हिमनद में

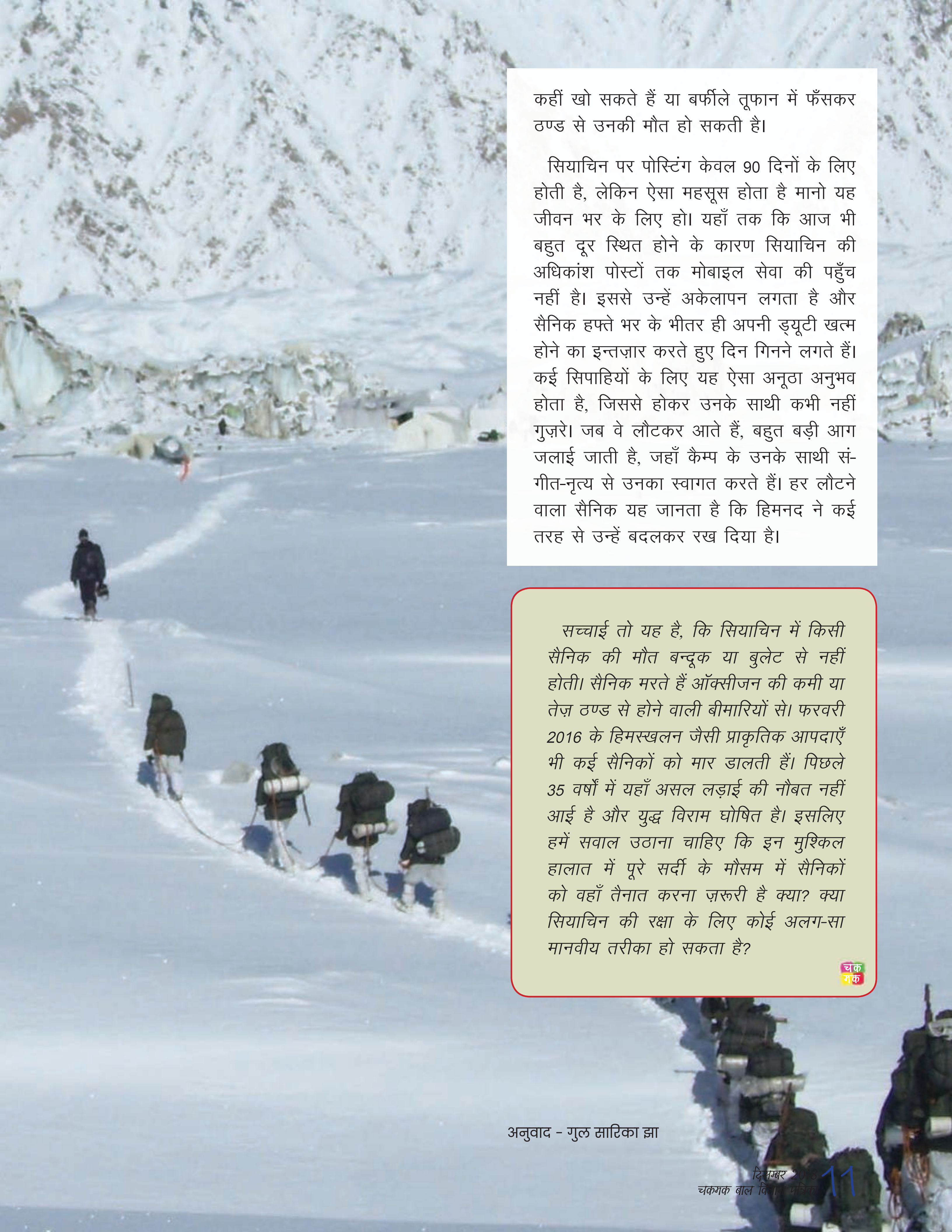

कहीं खो सकते हैं या बर्फीले तूफान में फँसकर ठण्ड से उनकी मौत हो सकती है।

सियाचिन पर पोस्टिंग केवल 90 दिनों के लिए होती है, लेकिन ऐसा महसूस होता है मानो यह जीवन भर के लिए हो। यहाँ तक कि आज भी बहुत दूर स्थित होने के कारण सियाचिन की अधिकांश पोस्टों तक मोबाइल सेवा की पहुँच नहीं है। इससे उन्हें अकेलापन लगता है और सैनिक हफ्ते भर के भीतर ही अपनी ड्यूटी खत्म होने का इन्तज़ार करते हुए दिन गिनने लगते हैं। कई सिपाहियों के लिए यह ऐसा अनूठा अनुभव होता है, जिससे होकर उनके साथी कभी नहीं गुज़रे। जब वे लौटकर आते हैं, बहुत बड़ी आग जलाई जाती है, जहाँ कैम्प के उनके साथी संगीत-नृत्य से उनका स्वागत करते हैं। हर लौटने वाला सैनिक यह जानता है कि हिमनद ने कई तरह से उन्हें बदलकर रख दिया है।

सच्चाई तो यह है, कि सियाचिन में किसी सैनिक की मौत बन्दूक या बुलेट से नहीं होती। सैनिक मरते हैं ऑक्सीजन की कमी या तेज़ ठण्ड से होने वाली बीमारियों से। फरवरी 2016 के हिमस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाएँ भी कई सैनिकों को मार डालती हैं। पिछले 35 वर्षों में यहाँ असल लड़ाई की नौबत नहीं आई है और युद्ध विराम घोषित है। इसलिए हमें सवाल उठाना चाहिए कि इन मुश्किल हालात में पूरे सर्दी के मौसम में सैनिकों को वहाँ तैनात करना ज़रूरी है क्या? क्या सियाचिन की रक्षा के लिए कोई अलग-सा मानवीय तरीका हो सकता है?

अनुवाद - गुल सारिका झा

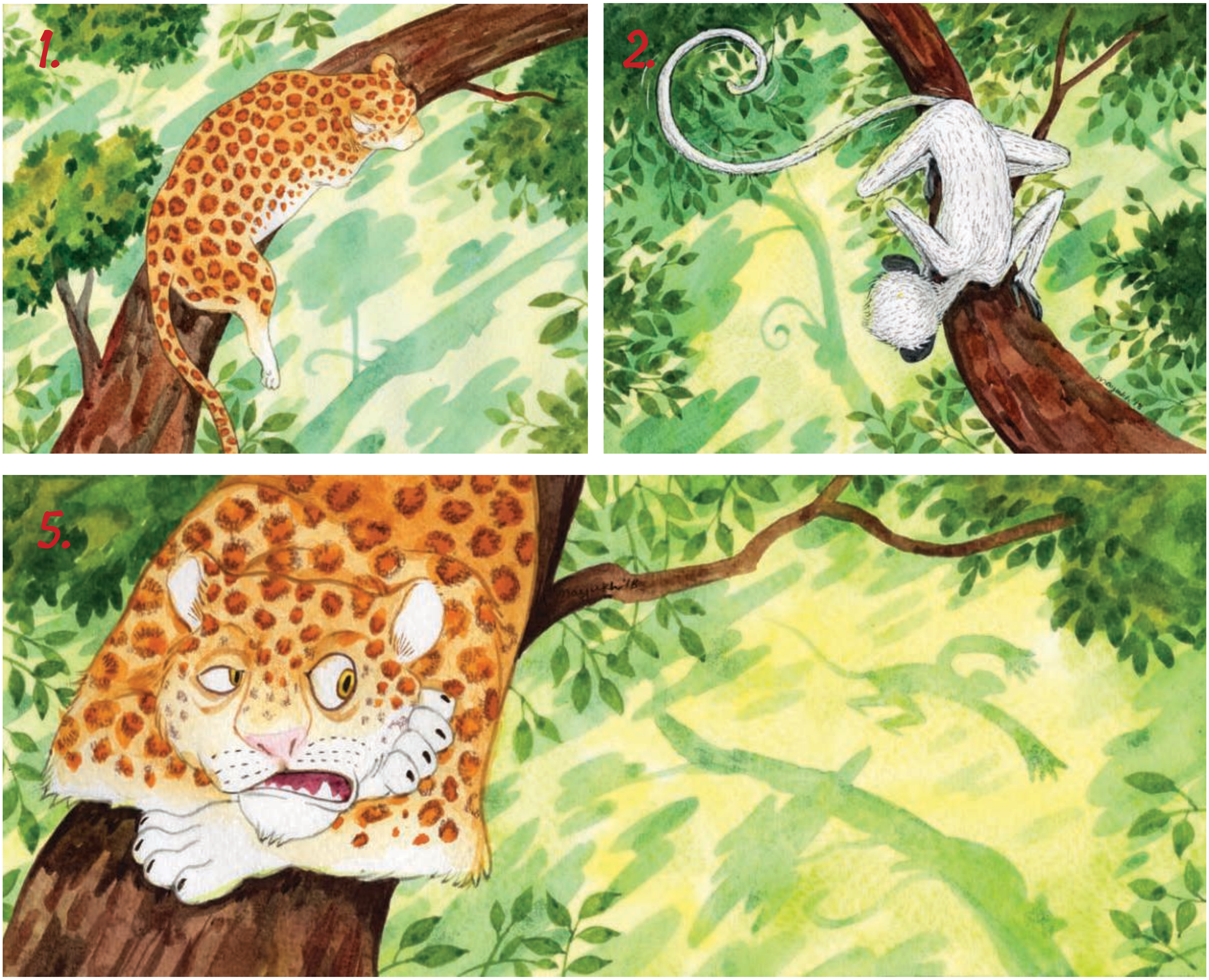

तेन्दुआ और बन्दर

सुशील शुक्ल
चित्र: मयूख घोष

तेन्दुआ पेड़ के ऊपर था। उसकी परछाई पेड़ के नीचे। बन्दर पेड़ के ऊपर था। और उसकी निगाह पेड़ के नीचे। उसे तेन्दुए की परछाई दिखी। वह उसे साफ-साफ देखने एक और डाल पर उछलकर आया। इसी डाल पर तेन्दुआ बैठा था। तेन्दुए की नज़र अपनी परछाई पर थी। जब बन्दर डाल पर कूदा तो उसकी परछाई ने भी ज़मीन पर एक छलाँग लगाई। वह छलाँग लगाकर तेन्दुए की परछाई पर कूदी। तेन्दुआ यह देख चकित था। इस हमले से थोड़ा डर भी गया था। पहली बार उसने एक बन्दर को एक तेन्दुए पर झपटते देखा था।

इसके एक क्षण बाद उसने एक बन्दर को ठीक अपने सामने देखा। उसे देखते ही वह भागा। नीचे ज़मीन पर आ गया। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि ऊपर डाल पर बैठे बन्दर को देख ले।

वह ज़मीन पर आया तो वहाँ एक और बन्दर था। वह तेन्दुए को देखते ही दुम ऊँची कर भागा। इससे तेन्दुए की हिम्मत बढ़ी। फिर भी वह दुबारा उस पेड़ पर कभी नहीं चढ़ा।

3.
4.
6.
7.
8.

चिड़चिड़ाहट

शादाब आलम

चित्र: पिटारा उत्सव, भोपाल से प्राप्त

चिड़-चिड़, चिड़-चिड़, चिड़चिड़ाहट।

बड़ी देर से तंग कर रहा
मुझे गणित का एक सवाल।
सर चकराए, रोना आए
हुईं थकन से आँखें लाल।
दाँत पीसता हूँ रह-रहकर
हुई अजब-सी तिलमिलाहट।
चिड़-चिड़, चिड़-चिड़, चिड़चिड़ाहट।

बन्द कर दिया बस्ता मैंने
रख दी कॉपी और किताब।
माँ ने पानी मुझे पिलाकर
दिया महकता हुआ गुलाब।
इक लम्बी-सी साँस भरी तो
दिखी चैन की झिलमिलाहट।
चिड़-चिड़, चिड़-चिड़, चिड़चिड़ाहट।

मिनटों में ही वापस लौटी
मेरे होंठों पर मुस्कान।
दोबारा जब कोशिश की तो
लगा मुझे सब कुछ आसान।
उत्तर आया उछल पड़ा मैं
लगी गूँजने खिलखिलाहट।
चिड़-चिड़, चिड़-चिड़, चिड़चिड़ाहट।

इन्सानियत का बँटवारा

रुबीना खान
चित्र: कनक शशि

रंग-बिरंगे स्वेटरों का बाज़ार देख उन्हें लेने का दिल करता है। कभी-कभी स्वेटर ले भी लेते हैं। लेकिन ऐसा वक्त भी रहा जब कड़कड़ाती ठण्ड में स्वेटर लेना तो दूर तन पर ढंग के कपड़े भी नहीं थे। लम्बा वक्त ठण्ड में कँपकँपाते हुए ही गुज़रा।

बचपन की बातें भले ही ठीक से याद न हों पर कुछ हादसे ऐसे होते हैं जो हमेशा के लिए आपके ज़ेहन में बस जाते हैं। जब कभी भी उस तरह की बातें आसपास होते देखते हैं तो फिर उस गुज़रे वक्त का एहसास होने लगता है। ऐसी ही एक बुरी याद मेरे साथ आज तक चली आ रही है, जिसका असर न सिर्फ मुझ पर बल्कि मेरे पूरे परिवार पर रहा है। उस वक्त की कई बातें मुझे याद हैं जिनका ज़िक्र मैं यहाँ कर रही हूँ। जो याद नहीं उन्हें परिवार के अनुभवों के आधार पर लिख रही हूँ।

बीएचईएल गोविन्दपुरा क्वार्टर के नज़दीक ही एक छोटे-से मोहल्ले में मैं अपने परिवार और कुछ रिश्तेदारों के साथ रहती थी। बात 6 दिसम्बर 1992 की है, जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे चरम पर थे। राम मन्दिर, बाबरी मस्जिद जैसी बातें कई दिनों से चर्चा में चल रही थीं। फिर कर्फ्यू भी लग गया जो कि उस वक्त हमारे लिए नई बात थी। उस दिन बाऊजी भी काम पर नहीं गए थे। मैं, बाऊजी और मेरी दो बड़ी बहनें घर में टी.वी. देख रहे थे। सुबह के तकरीबन 10 बजे होंगे। अम्मी घर के बाहर सामने फर्शी पर हमारी स्कूल यूनिफार्म धो रही थीं। सब रोज़ाना की तरह ही चल रहा था।

अचानक से शोर सुनाई देने लगा। अम्मी ने देखा गायें भागती हुई आ रही थीं और उनके पीछे माथे पर तिलक लगाए, हाथ में तलवारें, बन्दूकें लिए बहुत सारे लड़के (युवा) भागते आ रहे थे। उन्हें देख घबराहट में अम्मी घर से दूसरी तरफ भागने लगीं। तभी एक आंटी ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने घर में खींच लिया। कुछ ही देर में वहाँ सन्नाटा हो गया। सभी के दरवाज़े बन्द हो गए थे। हम घर में यह सोच परेशान हो रहे थे कि अम्मी कहाँ हैं? रोशनदान से देखा तो अम्मी वहाँ नहीं दिखीं।

कुछ ही देर में बाहर से चीखने और रोने की आवाज़ें आने लगीं जो बेचैनी पैदा कर रही थीं। घर के पास ही नाज़िम भाई का घर था। वह घर की दहलीज़ पर खड़े उन लोगों को गुलेल से मार रहे थे, तभी उनमें से किसी ने उन्हें बाहर खींच लिया। उनकी चीखों की आवाज़ें आज भी मेरे कानों में गूँजती हैं। उनकी अम्मी दौड़कर आईं तो उन्हें भी धक्का दे दिया गया। सामने रह रहीं हमारी फूफी चिल्लाने लगीं तो वे लोग उनके घर में घुस गए। उस वक्त वह अकेली थीं। उनके घर में तोड़-फोड़ शुरू कर दी। उन्होंने रोकने की कोशिश की तो उनके पैर पर तलवार मार दी। वे आज तक ठीक से चल नहीं पातीं।

बाहर जब यह सब चल रहा था उस दौरान बाऊजी और मामू लोग उन सब से निपटने के लिए सामान इकट्ठा कर रहे थे क्योंकि हमारे पास हथियार नहीं थे। हमारे घर के किचन से ही नानी के घर जाने के लिए अन्दर से रास्ता था। सब ने किचन की दीवारें तोड़नी शुरू कर दीं जो कि मिट्टी और ईंटों से बनी थीं। बाऊजी, मामू उन लोगों पर ईंटें फेंकने लगे। बाऊजी घर के दरवाज़े पर खड़े थे। उन्हें दंगा करने वाले बाहर खींचने लगे। घर के लोगों ने बाऊजी को अन्दर की तरफ़ खींचा तो उन लोगों ने बाऊजी के हाथ पर फरशा (धारदार पत्थर) मार दिया। उन्हें बेहद तकलीफ होने लगी। हमने उनके हाथ पर दुपट्टा बाँध दिया, यह सोचते हुए कि इससे खून बहना बन्द हो जाएगा। अब तक हम कोशिश करके फूफी को भी हमारे घर ले आए थे। उनके पैर से खून बन्द करने के लिए भी घर की औरतें लगी हुई थीं।

हालात बिगड़ते देख हम बच्चों और औरतों को घर के पीछे वाले रास्ते से निकालकर एक महफ़ूज़ कमरे में बन्द कर दिया गया था। बाहर तो ना जान हिफाज़त में थी ना ही इज़्ज़त-आबरू। अम्मी का अब तक कुछ पता नहीं लग पाया था। बड़ी बहन मुझसे एक पल के लिए दूर नहीं हुई। वह जानती थी मैं अम्मी के बिना नहीं रह पाती थी। मैं उस वक्त महज़ 5 साल की उम्र में चल रही थी। हम जिस कमरे में थे वहाँ हमारे कुछ दोस्त भी साथ थे। एक दोस्त को ड्रॉइंग बनाना पसन्द था। वह ड्रॉइंग बनाने लगा।

तभी पीछे के घर से तोड़-फोड़ की आवाज़ें आने लगीं। वह घर हमारे बड़े पापा का था। वह लम्बे वक्त से बीमार थे और पलंग पर ही लेटे रहते थे। उन लोगों ने उस घर में आग लगा दी। बड़े पापा बहुत चीख रहे थे। हम यह सब जाली से देख रहे थे, अपने मुँह को हाथ से दबाए ताकि हमारी चीखें बाहर न सुनाई दें। बड़े पापा का घर जलता देख उनकी बेटी और हमारे मामू उन्हें बचाने गए। दंगा करने वाले लोगों ने उन पर गोलियाँ चला दीं। अप्पी के हाथ में और मामू के कन्धे पर गोली लग गई, वे वहीं गिर पड़े।

यह लड़ाई सिर्फ हमारे मोहल्ले में चल रही थी जिसमें सिर्फ मुस्लिम परिवार रहते थे। लड़ाई सुबह 10 बजे से शुरू हुई और सूरज डूबने के वक्त तक होती रही। ये घण्टे दहशत भरे थे और कभी भी कोई अनहोनी हो सकती थी। लोग खुद को बचाते-बचाते थक चुके थे।

अब तक मिलिट्री के लोग भी आ गए थे। उन्हें देख मोहल्ले के लोग उन्हें मारने लगे। कोई उन पर यकीन नहीं कर पा रहा था क्योंकि जो लोग दंगा कर रहे थे उनमें से कुछ लोग वही यूनिफार्म पहने हुए थे। बड़ी मुश्किल से वे सब को यकीन दिला पाए। उन्हें देख दंगाई भाग गए थे।

हम सभी को घरों से निकालकर बाहर मैदान की तरफ ले जाया जा रहा था और घायलों को अस्पताल की तरफ। हर तरफ से अपनों को ढूँढने के लिए दी जाने वाली आवाज़ें और रोने की आवाज़ें आ रही थीं। सब कुछ बिखरा हुआ था। बाहर निकले तो जगह--जगह लाशें पड़ी दिख रही थीं। अपना घर पलटकर देख रही थी कि कल क्या था और आज क्या हो गया। न चाहते हुए भी घर छोड़ना पड़ रहा था। मैदान में हम सब बैठ गए थे। उस वक्त नानी हमारे साथ थीं। हमारी नज़रें अम्मी को तलाश रही थीं। किसी ने आकर कहा कि तुम्हारी अम्मी को मार दिया उन लोगों ने। हम बहुत रोने लगे। लेकिन कुछ ही देर में बदहवास-सी अम्मी हमें ढूँढते हुए हमारे पास आ गईं। उन्हें देखते ही हम बहनें उनसे लिपट गईं। उस पल ऐसा लगा जैसे हमारी रुकी हुई साँसें दोबारा चलने लगी थीं।

हम सभी को तकरीबन दो किलोमीटर दूर मदरसे में ले जाया जा रहा था। मामू का बेटा छोटा था जिससे हम सब को बेहद लगाव था। वह भूख की वजह से रो रहा था। अप्पी मिलिट्री के एक सर से ज़िद करते हुए उनके साथ घर चली गईं। वहाँ से उन्होंने भय्यु की दूध की बोतल के साथ ही छोटी बहनों का खयाल करते हुए सुबह की बनी दाल और सूखी रोटी साथ ले ली।

हम मदरसे की तरफ जाने लगे। अब तक अँधेरे के साथ ठण्ड भी बढ़ गई थी। पर इस ठण्ड से बचने के लिए हमारे पास कुछ न था। पैर में चप्पल तक नहीं थीं। अम्मी का दामन पकड़े हम चले जा रहे थे। मदरसे के एक-एक कमरे में कई सारे लोग साथ ठहरे थे। मिलिट्री के लोग बाहर कैम्प लगाए आग जलाकर बैठ गए। हम अभी भी डर में थे। हमने मदरसे के मैदान से पत्थर इकट्ठा कर कमरे के पास रख लिए थे। सुबह से कुछ खाया नहीं था इसलिए भूख भी लगने लगी थी। हम बच्चों के सामने वही दाल और सूखी रोटी रख दी गई थी जो अप्पी उठाकर लाई थीं। हम उसे ऐसे खाने लगे जैसे पहली बार खाना मिला हो। खाने के बाद सोने के लिए आँखें बन्द कीं तो वही सब आवाज़ें गूँजने लगीं, वही नज़ारे दिखने लगे। सारी रात खौफ में निकली।

सुबह ट्रक में हमारे लिए खाने के सामान के साथ कपड़े, चप्पल, बर्तन वगैरह आए। रोज़ाना इसी तरह से सामान आने लगा जिसे लेने हम बच्चे दौड़ पड़ते। इस तरह एक महीना बीत गया। मिलिट्री के लोग अब भी हमारे साथ ही ठहरे थे। अब तक बाऊजी और बाकी कई सारे लोग भी अस्पताल से ठीक होकर वापस आ गए थे। हमें वापस मोहल्ले ले जाया जा रहा था।

मोहल्ले में हमें घरों की बजाय सिर्फ मैदान ही नज़र आ रहा था। हमारा घर जो मदरसे जाने के वक्त तक सही-सलामत था वो अब राख के ढेर में तब्दील हो चुका था। कर्फ्यू का खयाल कर बाऊजी ने बैंक से पैसे निकालकर घर में राशन भर लिया था। वो पैसे अब नहीं थे। अम्मी के ज़ेवरात के साथ ही वो ज़ेवरात भी अब नहीं थे जो उन्होंने हम बहनों के लिए बनवाए थे। यह सब सोचकर बाऊजी बहुत अफसोस कर रहे थे। अम्मी के इन अल्फाज़ों से उन्हें राहत मिली कि हमारे बच्चे, हमारा परिवार हमारे साथ है। इससे बढ़कर कुछ नहीं। हम फिर से सब बना लेंगे।

हमने टूटी हुई ईंटें, फट्टे, बाँस जो कुछ भी मिला उससे घर बनाना शुरू कर दिया। रात में यही लगता कि फिर से कोई न आ जाए। फिर घर भी पहले जैसा मज़बूत नहीं था। अप्पी बाऊजी से कहने लगीं कि हिन्दू लोग गन्दे होते हैं। हमारे घर जला दिए। उनमें कुछ लोग तो हमारे घर आते रहते थे फिर भी हमारे साथ कितना गलत काम किया। अम्मी-बाऊजी उन्हें समझाने लगे कि कुछ लोगों की वजह से सब को गलत मानना सही बात नहीं। मिलिट्री के लोग, डॉक्टर और जिन लोगों ने हमें सामान पहुँचाया उनमें से कई लोग हिन्दू थे फिर भी हमारी मदद करते रहे। अम्मी ने बताया कि हमारे घर के पीछे एक क्वार्टर में एक बुजुर्ग आंटी जो कि अपाहिज हैं, अपने बहू-बेटे के साथ रहती हैं। उन्होंने अपने घर में 60-70 मुसलमानों को पनाह देकर उनकी जान बचाई। बाऊजी-अम्मी की यह बातें आज भी हमारे ज़ेहन में हैं, जिनकी वजह से हमने लोगों को उनके मज़हब के आधार पर अच्छा-बुरा मानना बन्द कर दिया है।

इस हादसे को कई साल बीत गए हैं लेकिन इससे जुड़े गम लोगों के दिलों में आज भी ताज़ा हैं। उस वक्त मैं यह सोचती थी कि ये सब क्यों हो रहा है। और आज भी यही लगता है इस सब की ज़रूरत क्या थी? हम इन्सान के वजूद से इस दुनिया में आए थे और यह वजूद हमारे साथ ता-उम्र रहेगा। मज़हबों के चक्कर में तो हमें लोगों ने डाला है तो जो हम असल में हैं, उसी वजूद और उसी पहचान के साथ क्यों नहीं रहते?

क्षिप्रा नदी

अंजना त्रिवेदी
चित्र: शुभांगी चेतन

मैं जब अपने बचपन को याद करती हूँ, तो सबसे पहले उसमें क्षिप्रा नदी और मेरे नाना दिखाई देते हैं। इन्दौर से 40 किलोमीटर दूर क्षिप्रा गाँव में मेरा ननिहाल था। सबसे सुन्दर क्षिप्रा नदी इसी गाँव से दिखाई देती थी। नाना गाँव में हैडमास्टर थे, इसलिए उनका रुतबा बहुत ऊँचा था।

नाना का घर आजकल की ड्रॉइंग में जैसा घर बनाया जाता है वैसा ही था। पेड़ों के बीच से नदी का एक कोना झाँकता हुआ, हवाएँ अपनी पूरी ताकत से चलती हुई, जिसमें चूल्हा जलाना एक चुनौती बन जाता था। घर से पूरा खुला आसमान और घर के सामने पहाड़ों की कतार दिखाई देती थी।

सुबह के काम करके नाना हम सब बच्चों को क्षिप्रा नदी में नहाने, कपड़े धोने और आम-अमरुद खाने ले जाते थे। क्षिप्रा नदी के किस्से-कहानियाँ सुनने हम इन्दौर से दौड़े चले जाते थे।

नदी के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, सबसे पहले नाना ने ही सिखाया था। सुबह के दो घण्टे और शाम के दो घण्टे हमारे वहीं नदी पर गुज़रते थे। नदी में ज़रा भी गन्दगी दिखती तो नाना उसे अपने हाथ से उठाकर किनारे पर कर देते थे। नदी में पानी का बहाव देखकर नाना कहते, “आज नदी बड़ी शान्त लग रही है।” तो कभी कहते, “आज क्षिप्रा माई को जाने क्यों गुस्सा आ रहा है?” कई बार ऐसा हुआ, कि जब नदी का रुख नाना को ठीक नहीं लगा तो उन्होंने

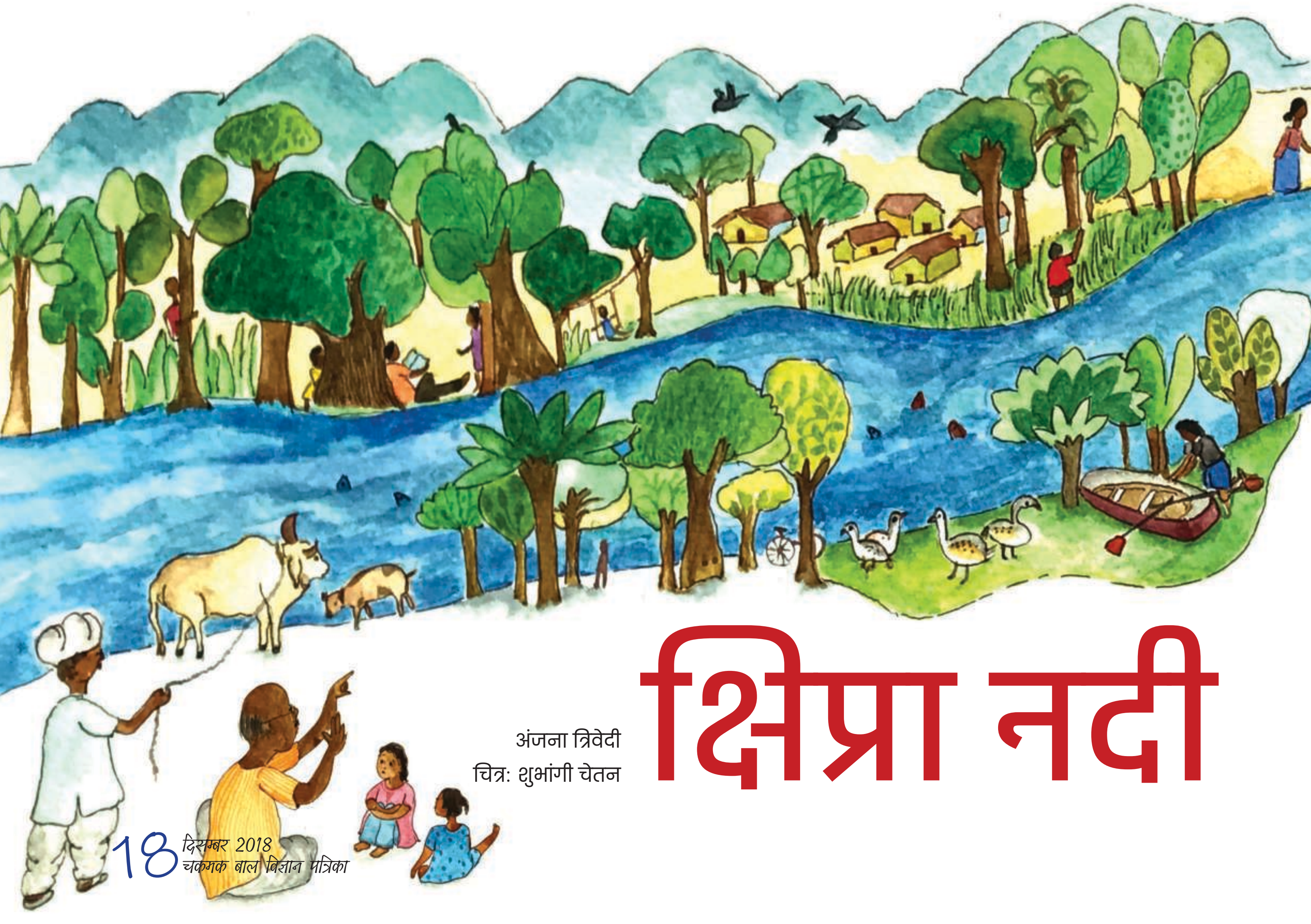

हमें नहाने की इजाज़त नहीं दी। न जाने नाना नदी से क्या-क्या बातें करते थे? वह हमेशा कहते थे कि “ये जीवन्त है। इसके पास बैठ जाओ तो सब दुख दूर हो जाते हैं।” ये सब बातें तब तो समझ में आती नहीं थी, पर अब जब चारों ओर की नदियाँ सूख रही हैं, तब यह बात समझ में आ रही है।

हम नदी किनारे अपने सारे खेल खेलते थे। नदी को एक ओर से पहाड़ ने घेरा था, तो दो तरफ से पेड़ों ने। उन पेड़ों में कबीट, इमली और आम के पेड़ थे। इन पेड़ों और नदी, दोनों के साथ हम छुपनछुपाई, घोड़ा बदामछाई खेलते थे। कभी आसपास के बच्चे आ जाएँ तो खो-खो भी खेलते थे। सावन में चारों ओर झूले लगने से नदी भी खुश होकर जैसे झूमने लगती थी।

नदी खामोश ज़रूर रहती लेकिन सुबह-शाम उसके चारों तरफ जब लोगों की आवाजाही होती तो वो खिल उठती। नदी के गीत गातीं महिलाएँ अपनी बात रखने शिव के मन्दिर में आतीं तो ऐसा लगता, कि नदी भी उनके साथ गुनगुना रही है।

अस्सी के दशक की बात है, एक दिन अचानक पता चला कि नदी के ऊपर पुल बनेगा जो बॉम्बे-आगरा मार्ग तक जाएगा। उस दिन गाँव वालों ने नाना के घर में ही बैठकर सरपंच को लिखित में पुल नहीं बनने का ज्ञापन दिया। गाँव वालों ने ठेकेदार से भी बात की। हम बच्चे नाना की परेशानी को समझ नहीं पा रहे थे। किन्तु इतना ज़रूर समझ में आ रहा था कि नाना इसके खिलाफ थे। उन्होंने इन्दौर के कलेक्टर अजित

जोगी से चर्चा की। चर्चा के बाद जब नाना हमारे इन्दौर वाले घर में आए तो उन्होंने बताया, “नदी की छाती कैसे कोई खोद सकता है? मोक्षदायिनी नदी को चीर देंगे? पुल बनेगा तो पहाड़ कटेगा, पहाड़ कटेगा तो पशु-पक्षियों पर इसका असर होगा, नदी प्रदूषित होगी। नदी हमारे पूर्वजों की अमानत है। आगे की पीढ़ी को हम क्या सौंपकर जाएँगे? हमारी ज़िम्मेदारी बनती है, कि नदी कुछ बोलती नहीं है तो उसकी बात हम रखें।”

देखते-देखते पुल का काम शुरू हो गया। बालू-रेत तो ठेकेदार को नदी के पास से ही मिल गई। नाना

अनमने-से रहने लगे। जब हम क्षिप्रा जाते तब नाना से नदी पर जाने की ज़िद करते तो वह कहते, “शाम को चलेंगे सुबह नहीं।” क्योंकि वह मज़दूरों का इलाका बन गया था। रेत, ईंट, गिट्टी और लोहे के सरियों के साथ बड़ी-बड़ी मशीनों का जमघट लगा रहता। तीज-त्यौहार पर नदी के गीत गाने वाली महिलाएँ भी कम आने लगीं। बाहर से आने वाले लोग नदी से वैसा प्यार नहीं कर पाते थे जैसा वहाँ के स्थानीय लोग करते थे। शाम को ठेकेदार चला जाता तो हम वापस नाना से नदी के उस पार रहने वाले आदि मानव के विकास की कहानी सुनना चाहते। किन्तु अब उन्होंने वह कहानी सुनाना बन्द कर दिया। नाना कहते थे, “नदी में वह तेज ही नहीं बचा है।” नदी का तो नहीं मालूम पर नाना की खिन्नता का तेज बढ़ गया था। वह नदी को नाला बनाने वालों को खूब कोसते थे।

नाना अपनी अन्तिम साँस तक शाम को क्षिप्रा नदी के पास टहलने के लिए जाते रहे। वो कहते, “जैसे मोक्ष वाहिनी क्षिप्रा नदी को मोक्ष प्राप्त हो गया, वैसे ही मुझे भी मोक्ष प्राप्त हो जाए।” दोनों को मोक्ष प्राप्त हो गया। उन्हें जब लोग क्षिप्रा नदी की गोद में सुला रहे थे, तब दोनों ही शान्त, सरल और निष्कपट लग रहे थे।

कई साल बाद जुलाई माह में बेटी बीहू को क्षिप्रा नदी दिखाने ले गए तो घर से दिखाई देने वाला पहाड़, नदी, पेड़ और पत्थर कुछ भी नहीं दिखाई दिया। एक कोने में सिमटा-सा शिव मन्दिर दिखाई दिया जो अब खुद में सकुचाया-सा था। हमारे बचपन और बीहू के बचपन के बीच पूरी की पूरी एक नदी गायब हो गई।

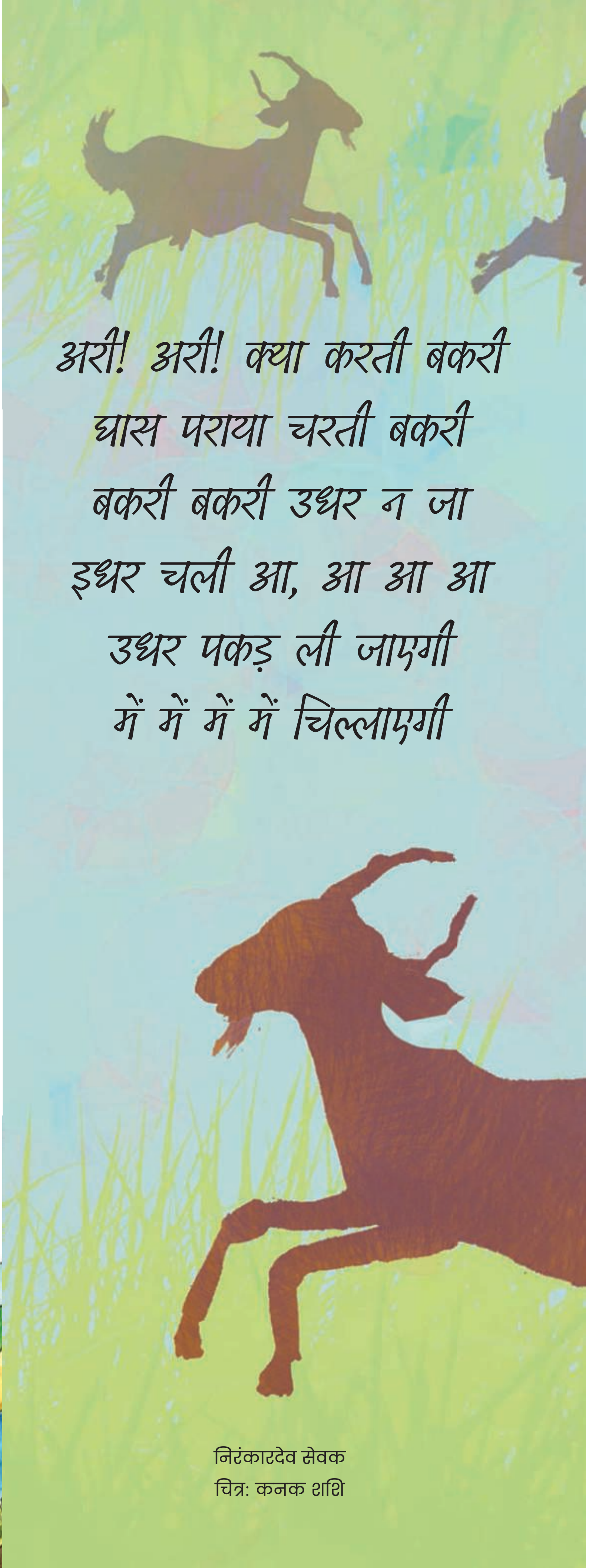

अरी! अरी! क्या करती बकरी
घास पराया चरती बकरी
बकरी बकरी उधर न जा
इधर चली आ, आ आ आ
उधर पकड़ ली जाएगी
में में में में चिल्लाएगी

निरंकारदेव सेवक
चित्र: कनक शशि

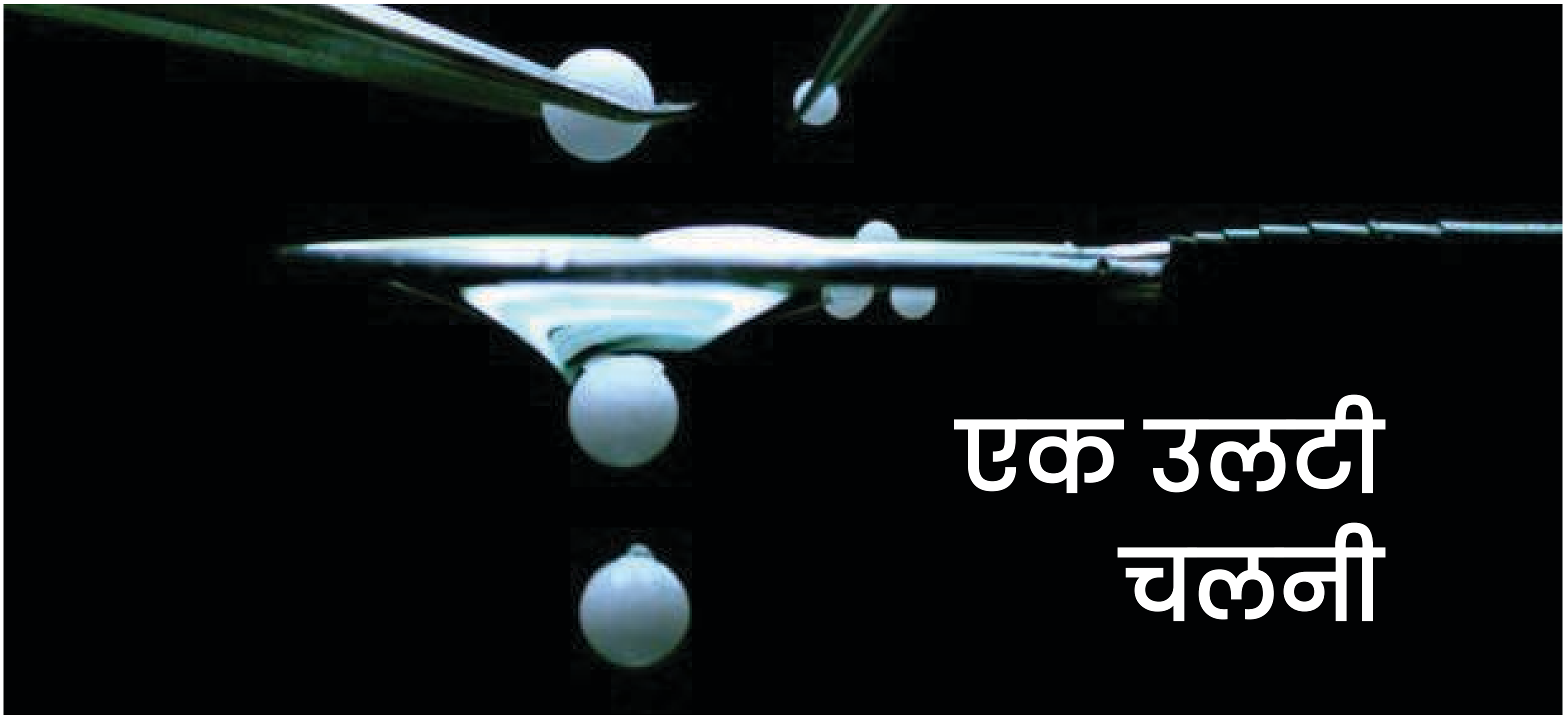

एक उलटी चलनी

तुमने गेहूँ और चावल से कंकड़ निकालने वाली चलनी तो देखी होगी। ये गेहूँ या चावल के दानों को चलनी में रोक लेती है और छोटे-छोटे कंकड़ों को निकाल देती है। चाय की छन्नी भी तो यही करती है - चायपत्ती छन्नी में रह जाती है और चाय गिलास में। आमतौर पर चलनियाँ ऐसी होती हैं कि उनमें से छोटे कण तो निकल जाते हैं, जबकि बड़े कण रुक जाते हैं। मगर कुछ लोगों ने एक ऐसी चलनी बनाई है जो इससे ठीक उलटा काम करती है। वह बड़े-बड़े कणों को निकल जाने देती है और छोटे-छोटे कणों को रोक लेती है।

यह काम थोड़ा मुश्किल लगता है ना? लेकिन अमेरिका में टैक-सिंग वाँग और उनके साथियों ने एक ऐसी ही चलनी बनाई है। यह चलनी दरअसल एक झिल्ली है यानी एक ऐसी परत जो लचीली होती है। साबुन को पानी में घोलकर बुलबुले फूँकने के लिए जब हम प्लास्टिक का छल्ला उसमें डुबाते हैं तो छल्ले में एक परत-सी बनती है। कुछ ऐसी ही दिखती है यह झिल्ली जो सर्फैक्टेण्ट से बनी है। यह झिल्ली पानी के कणों के बीच के उस बल के कारण बनती है, जिसे पृष्ठ तनाव (सर्फेस टेंशन) कहा जाता है।

साबुन की इस परत और वाँग की झिल्ली में एक और अन्तर है। इस झिल्ली की एक खासियत है कि यह कुछ चीज़ों को रोक सकती है और कुछ चीज़ें इसे चीरकर निकल जाती हैं, जिसके बाद यह झिल्ली फिर जुड़ जाती है। वाँग और साथियों ने कई झिल्लियाँ बनाईं। उस पर उन्होंने अलग-अलग ऊँचाइयों से प्लास्टिक और काँच के मोती टपकाए। उन्होंने देखा कि अधिक ऊँचाई से गिरने वाले मोती या अधिक वज़न वाले मोती झिल्ली के पार निकल जाते हैं, जबकि कम ऊँचाई से गिरने वाले या कम वज़न वाले मोती ऊपर ही अटक जाते हैं। यानी कि यह चलनी कणों की छँटाई उनके आकार के आधार पर नहीं बल्कि उनके वज़न और गति के आधार पर करती है। यह भी कह सकते हैं, कि जिन कणों की गतिज ऊर्जा (काइनेटिक इनर्जी) ज़्यादा होती है, वे इस चलनी को पार कर जाते हैं।

तुम सोच रहे होगे कि इसका क्या फायदा? सोचो, अगर खुला घाव हो जिसका ऑपरेशन किया जा रहा हो तो सर्जरी में इस्तेमाल हो रहे छुरी, अन्य उपकरण तो झिल्ली से निकल जाएँगे और रुक जाएगी धूल और कीटाणु। इस झिल्ली का उपयोग सूखे शौचालयों में भी हो सकता है, जहाँ पानी का इस्तेमाल कम या नहीं होता है। बदबू का एहसास दिलाने वाले अणु झिल्ली में फँस जाएँगे और शौचालय इस्तेमाल करने लायक बना रहेगा।

स्रोत फीचर्स से साभार

अपना रास्ता ढूँढना

घर है बहुत दूर

एक होमिंग पिजियन (कबूतर की एक किस्म) को उसके घर से 1800 किलोमीटर दूर छोड़ दो। तुम्हें यह जानकर शायद अचरज होगा कि यह कबूतर इतनी दूर से भी वापस लौट सकता है।

प्रवासी पक्षी हर साल गर्मी और सर्दी के अपने निवास स्थानों के बीच हज़ारों किलोमीटर की दूरी तय करते हैं। हिलसा व अन्य कई प्रवासी मछलियाँ समुद्रों व सुदूर स्थित नदियों के बीच सफर करती हैं।

गुबरैले (Dung Beetles) गोबर का गोला बनाकर अपनी पिछली टाँगों की मदद से पीछे की ओर लुढ़काते हुए ले जाते हैं। रात में भी ये इसी तरह अपने घर खोज लेते हैं और गोबर के गोलों को ज़मीन में पहले से खोदे गए एक गड्ढे में रख देते हैं। हम यह जानने की कोशिश कर रहे हैं वे ऐसा कैसे करते हैं।

समस्या एक, रास्ते अनेक

कुछ जानवरों को जन्म से ही यह पता होता है कि उन्हें कहाँ जाना है। कुछ जानवर यह अन्य जानवरों से सीखते हैं। सभी जानवर ऐसा करने के लिए एक या एक से अधिक संकेतों, जैसे कुछ खास तरह के चिन्ह जो इन्हें मंज़िल तक ले जाते हैं, का उपयोग करते हैं। इनमें से कुछ संकेत इस प्रकार हैं:

लैण्डमार्क – चूहे, पक्षी और हाथी छोटी यात्राओं के दौरान अपनी राह खोजने के लिए रास्ते में आने वाली चीज़ों को याद रखते हैं। लम्बी दूरी की यात्राओं के लिए वे पहाड़ों, नदियों या समुद्र तटों जैसी विशेषताओं पर निर्भर रहते हैं।

सूरज - दिन में सक्रिय रहने वाले कई जीव अपनी स्थिति निर्धारित करने के लिए सूरज की स्थिति का उपयोग करते हैं। इनमें मधुमक्खियाँ, कई प्रकार की तितलियाँ और मैना भी शामिल हैं। मरुस्थली चींटियाँ बंजर इलाकों में अपने घोंसले ढूँढने के लिए सूरज की रोशनी के पैटर्न (जो मनुष्यों के लिए अदृश्य होते हैं) का उपयोग करती हैं।

nature conservation foundation
science for conservation
नेचर कॉन्ज़र्वेशन फाउण्डेशन द्वारा विकसित

तारों की स्थिति – रात में उड़ने वाले पक्षी जैसे कि यूरोप से अफ्रीका प्रवास करने वाले पक्षी अपने घर लौटने के लिए तारों की मदद लेते हैं। वे ध्रुव तारे के सम्बन्ध में तारामण्डलों की स्थिति को याद रखते हैं और अपनी दिशा तय करते हैं।

चुम्बकीय क्षेत्र – कबूतर व कई अन्य पक्षी उत्तर दिशा मालूम करने के लिए पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का पता लगा सकते हैं। इस संकेत का उपयोग कर वे अपने घर लौटते हैं।

आवाज़ - व्हेल और चमगादड़ आवाज़ें निकालती हैं जो चीज़ों से टकराकर लौटती हैं। ऐसा होने में लगे समय के आधार पर ये निर्धारित करते हैं कि वस्तु कितनी दूरी पर स्थित है।

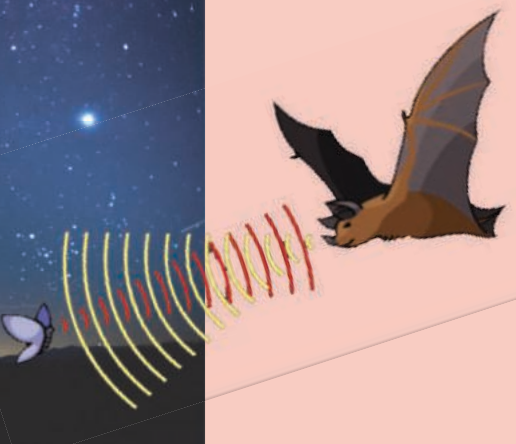

फील्ड डायरी

नक्शों की गैर-मौजूदगी में मनुष्य भी अपने गन्तव्य तक पहुँचने का रास्ता ढूँढने के लिए दृश्य संकेतों का उपयोग करते हैं। कोई इमारत, पेड़, तालाब, पहाड़ जैसे लैण्डमार्क, सूरज व अन्य तारों की स्थिति, अलग-अलग स्थानों पर बदलती मिट्टी का रंग और बहते हुए पानी की आवाज़।

अपने दो-एक दोस्तों के साथ मिलकर यह खेल खेलना। पता करना कि ऐसे संकेतों का उपयोग करते हुए अपना रास्ता खोजने में तुम कितने माहिर हो।

एक बड़े-से बगीचे या मैदान में जाओ जहाँ बहुत सारे पेड़-पौधे हों।

चारों प्रमुख दिशाओं - पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण का पता लगाओ। ऐसा तुम कितनी आसानी से कर पाए?

अब अपने साथी की कोई एक चीज़ जैसे कि कोई किताब या जूते छिपा दो और उसे ढूँढने के लिए निर्देश लिखो। उदाहरण के लिए तुम लिख सकते हो, "दस कदम बरगद के पेड़ की ओर जाओ" या, "चमेली की बेल के पास" या, "पूर्व की ओर मुड़ो"। अपने दोस्तों को केवल लिखे हुए निर्देशों का उपयोग करके छिपी हुई चीज़ को ढूँढने की कोशिश करने को कहो।

इसे बारी-बारी से खेलो। कोशिश करना कि इस खेल को एक बड़े खुले इलाके में खेल सको, जहाँ तुम किताब या जूते ढूँढने वाले अपने दोस्त पर नज़र रख सको।

निर्देश लिखना कितना आसान था? क्या तुम अपने दोस्त द्वारा लिखे गए निर्देशों का अनुसरण कर पाए? इस खेल को खेलने का अपना अनुभव हमें लिखकर भेजो। तुम्हें क्या लगता है - यदि तुम्हें किसी जंगल या रेगिस्तान में अपना रास्ता ढूँढना हो तो तुम ऐसा करने में सफल हो पाओगे?

अपनी फील्ड डायरी के वर्णन और छिपी हुई चीज़ को ढूँढने के खेल के अपने अनुभव हमें chakmak@eklavya.in पर भेजो और भारतीय जन्तुओं पर एक किताब जीतने का मौका पाओ।

अगर

सजिता नायर
चित्र: इशिता देबनाथ बिस्वास

अगर ब्लैक बोर्ड पर लिखने पर
ब्लैक बोर्ड शब्द खा जाता तो?
तो डाँट नहीं पड़ती।

अगर बादल नीचे होते तो?
तो पृथ्वी नीली नहीं, लाल होती।

अगर आग की बारिश होती तो?
सब लोग मिट्टी पीते और मिट्टी
से नहाते।

अगर इन्सान के तीन हाथ होते तो?
तो पेड़ों को हम गाने सुनाकर नचाते।

अगर स्कूल नहीं होते तो?
तो हम पाँच जगह एक साथ
जाते।

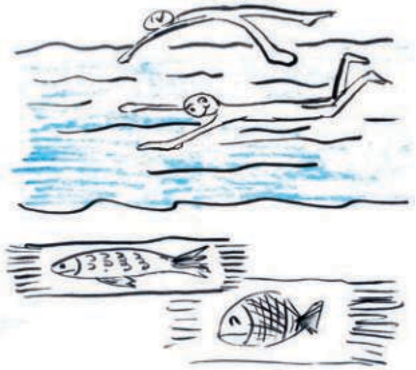

अगर पानी में मछलियाँ
नहीं होती तो?
इन्सान रह लेते।

अगर पेड़ चलते तो?
हम उनके साथ सेल्फी लेते।

अगर पत्थर हवा में उड़ते तो?

तो चिड़िया नदी में तैरती।

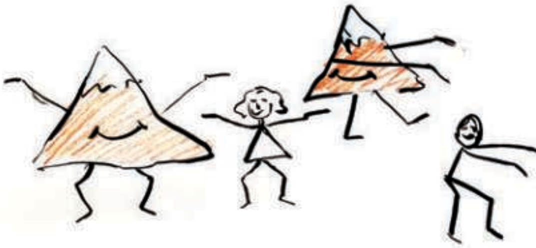

अगर पर्वत डांस करते तो?

हम उनके साथ दिन भर खेलते।

अगर टीचर नहीं होते तो?

इन्सान आसमान में होते।

अगर फूल, पेड़, पौधे चलते-फिरते तो?

तो बच्चों को चलना नहीं पड़ता।

अगर हमारे मुँह में दाँत नहीं होते तो?

तो इन्सान कीड़े-मकोड़े खाते।

अगर मारने को डण्डा नहीं होता तो?

अण्डा भी नहीं होता।

तुम सोच रहे होगे कि यह किस तरह के ऊटपटाँग सवाल-जवाब हैं? हुआ यूँ, कि हमने अपने दोस्तों के साथ एक खेल खेला। हर खिलाड़ी को दो पर्चियाँ मिलीं। पहली पर्ची पर कोई मज़ेदार सवाल लिखना था और दूसरे पर्ची पर उसका जवाब। शर्त यह थी, कि सवाल ‘अगर’ के साथ शुरू हो और जवाब ‘तो’ के साथ। फिर सवालों की पर्चियों को एक डिब्बे में डाल दिया और जवाबों को दूसरे डिब्बे में। दोनों डिब्बों को अच्छी तरह से हिलाया गया। अब सवालों के डिब्बे से कोई भी एक पर्ची निकालकर सवाल को पढ़ा और उसका जवाब दूसरे डिब्बे के किसी भी एक पर्ची को पढ़कर दिया। इस तरह बने ऊपर दिए गए सवाल-जवाब। हमें तो इस खेल में बहुत मज़ा आया, हम बहुत हँसे। तुम भी अपने दोस्तों के साथ यह खेलकर देखना और हमें बताना।

तुम भी बनाओ

...मुखौटा

जुगाड़ इन चीज़ों की - अखबार की लम्बी कतरनें, फेविकॉल, गुब्बारे, पानी, पेंट, ब्रश, टिश्यू पेपर।

सबसे पहले तो सोच लो कि तुम्हें किसका मुखौटा बनाना है। सोच लिया? तुमने जिसके बारे में सोचा है उसके लिए कुछ अन्य चीज़ों की ज़रूरत पड़ेगी तो उनको भी इकट्ठा कर लो। उदाहरण के लिए शायद तुम्हें लम्बे बालों के लिए ऊन के टुकड़ों या सुतली के टुकड़ों की ज़रूरत पड़ जाए।

पहले गुब्बारे को फुलाओ। जितना बड़ा मुखौटा चाहिए उतना बड़ा गुब्बारा फुलाकर उसमें गठान बाँध दो।

अब एक बर्तन में फेविकॉल लो और उसे ब्रश की सहायता से गुब्बारे पर लगाओ। एक-एक कर अखबार की लम्बी कतरनों को गुब्बारे पर चिपकाओ।

थोड़ी देर इसे सूखने के लिए रख दो।

अब दूसरी सतह के लिए फेविकॉल और पानी का घोल बनाओ।

अखबार की कतरनों को इस घोल में डुबोकर गुब्बारे पर चिपकाते जाओ।

ध्यान रखना कि नई कोटिंग से पहले पिछली कोटिंग सूख गई हो।

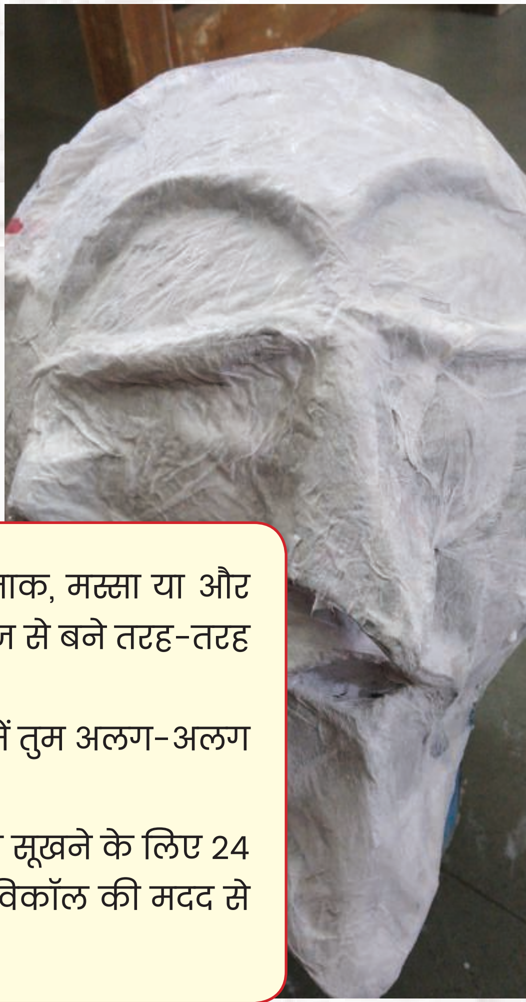

दूसरी कोटिंग के बाद तुम्हें अगर मुखौटे में कुछ चीज़ें जैसे भौंहें, आँखें, मुँह, नाक, मस्सा या और कुछ अलग से दिखाना हो तो उसे चिपका सकते हो। चार्ट पेपर और गीले कागज़ से बने तरह-तरह के आकार मुखौटे पर फेविकॉल या टेप की मदद से चिपका सकते हो।

इस एक गुब्बारे से तुम दो मुखौटे बना सकते हो। आगे और पीछे दोनों मुखौटों में तुम अलग-अलग आँख, नाक वगैरह बना सकते हो।

इसके बाद तीसरी और चौथी कोटिंग कर लो (चौथी कोटिंग के बाद मुखौटे को सूखने के लिए 24 घण्टों का समय दो)। जब यह पूरी तरह सूख जाए तो टिश्यू को मुखौटे पर फेविकॉल की मदद से अच्छे से चिपका दो।

टिश्यू की तीन कोटिंग के बाद जब मुखौटा सूख जाए तो तुम इसे चाकू की मदद से धीरे-धीरे काट सकते हो। तुम्हारे पास अब दो मुखौटे होंगे। इनमें तुम अपने मनचाहे रंग भर सकते हो। इसके अलावा अगर बाल लगाना तो वो भी लगा सकते हो।

अपने मुखौटे का फोटो हमें ज़रूर भेजना।

तोते सोच-समझकर औज़ार बनाते हैं

कुछ वर्ष पहले 2012 में यह रिपोर्ट आई थी, कि प्रयोगशाला में पला-बढ़ा फिगारो नामक तोता (cockatoo) लकड़ी छीलकर औज़ार बना लेता है। उसका इस्तेमाल करके पिंजरे से बाहर रखे पत्थर और काजू को अपनी तरफ खींच लेता है। मगर तब यह स्पष्ट नहीं था कि वह यह काम सोच-समझकर करता है। शायद बात इतनी ही है कि लकड़ी को छीलने पर लम्बी खपच्ची बन ही जाती है। और एक बार लम्बी खपच्ची बन जाने पर फिगारो ने उसका उपयोग काजू पाने के लिए कर लिया हो।

इस बात को समझने के लिए एक संशोधित प्रयोग किया गया, जिससे यह स्पष्ट हो गया है कि तोता सोच-समझकर एक विशेष आकार का औज़ार बनाता है। इस बार के प्रयोग में फिगारो के अलावा तीन नए तोतों को शामिल किया गया। इन सबको अलग-अलग सामग्री दी गई (पत्ती वाली टहनी, कार्डबोर्ड, इत्यादि) और साथ में 10 मिनट का समय दिया गया। हर बार यही हुआ, तोतों ने औज़ार बनाकर काजू को अपनी ओर खींच लिया।

लेकिन चारों तोतों ने एक जैसी क्षमता से औज़ार नहीं बनाए। देखा गया कि चारों तोतों ने जल्दी ही पत्ती वाली टहनी से पत्तियाँ साफ करके अपना औज़ार बना लिया। लकड़ी के टुकड़े में से खपच्ची निकालना तो फिगारो जानता ही था और इस बार के प्रयोग में सभी ने यह काम आसानी से कर लिया। फिर बारी आई कार्डबोर्ड की। एक तोता इससे कुछ भी नहीं बना सका। बाकी तोतों ने इसमें विशेष हुनर का प्रदर्शन किया।

इससे पता चलता है, कि उनके दिमाग में औज़ार का एक निश्चित आकार था और दी गई सामग्रियों से उन्होंने उस आकार का मानसिक चित्र बनाया और फिर पूरी योजना को अंजाम दिया। गौर करने लायक बात है, कि इससे पहले एक कौए ने बालटी में रखे भोजन के टुकड़े को प्राप्त करने के लिए वहीं रखे गए एक तार से हुक बनाने का करतब कर दिखाया था। अब लगता है, कि यह हुनर कई पक्षियों के पास है।

स्रोत फीचर्स से साभार

बाबूलाल होटल में ठहरा हुआ लम्बे डगवाला लड़का। रोज़ होटल में सोने के लिए एक नई खुली जगह ढूँढ लेता। पास ही एक सुन्दर तालाब था। वह तालाब में नहाने चला गया। पहले जिन तालाबों के पास वह सो चुका था, वे इससे बड़े तालाब थे। वैसे इस तालाब का नाम बड़ा--तालाब था। लम्बे डगवाले लड़के के नहाने के लिहाज़ से छोटा था। कुछ लोग इसे बूढ़ा-तालाब कहते थे। बाबूलाल महराज भी इसे बूढ़ा-तालाब कहते। लम्बे डगवाले लड़के को बाबूलाल महराज ने एक बार बताया था कि वे बूढ़ा--तालाब के पास रहते हैं। बूढ़ा-तालाब होटल के प्रवेशद्वार से बहुत दूर था। महराज जी कहा भी करते थे कि उनका घर दूर है। कितनी दूर यह मालूम नहीं था। पर तालाब दूसरों के लिए सचमुच बड़ा और बूढ़ा होते तक बड़ा था।

लम्बे डगवाला लड़का तैरना और डुबकी लगाना चाहता था। पानी उसके घुटने से थोड़ा ऊपर था। गहरी जगह ढूँढने के लिए वह तालाब के पानी में फच्च-फच्च घूमा। पर तालाब में उसके लायक गहरी जगह नहीं थी। तालाब में कीचड़ नहीं था। उसका तल पथरीला था। पानी साफ था। तालाब में वह छोटे-छोटे कदमों से चला था। लम्बे डग में तीन चार डग से ज़्यादा बड़ा नहीं था। जब वह तालाब में चला था तब मछलियाँ उछलते, बचते दिखतीं। बहुत बच-ने-बचाने के बाद भी एक-दो मछलियाँ दब ही जातीं! मछलियाँ बड़ी थीं। शायद वे भी बूढ़ी हो चुकी हों! अगर वह तालाब में लेटता तो उसके सिर और पैर बाहर निकल आते।

बूँद-बूँद टपकनेवाली जगह

विनोद कुमार शुक्ल

चित्र: हबीब अली

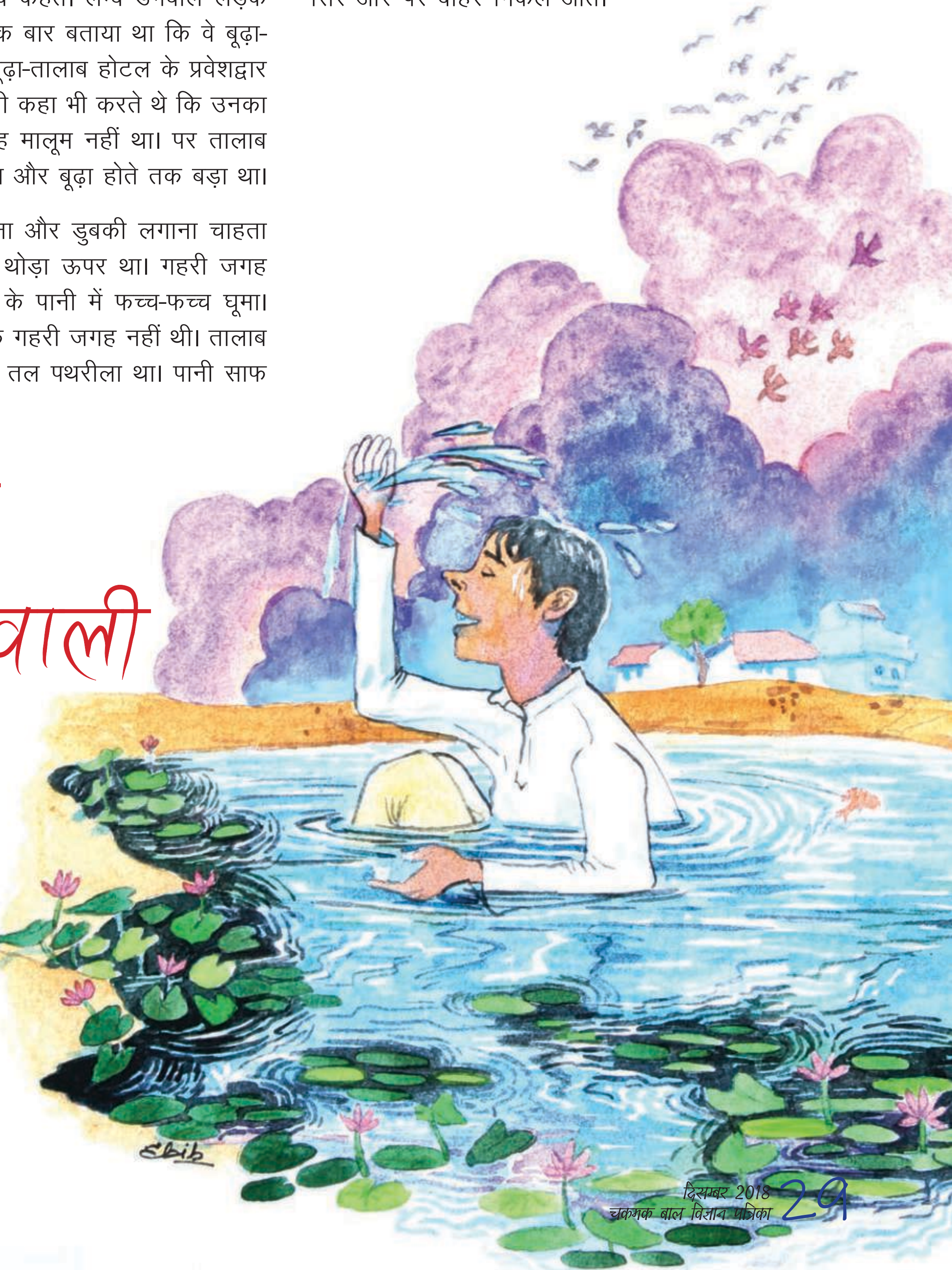

वह बैठे-बैठे किसी तरह बड़ी-बड़ी हथेलियों से पानी उलीचकर नहाया। वह कपड़े पहने हुए ही नहाता था। उसके पास यही एक जोड़ा कपड़ा था। कुर्ता दो-तीन जगह से फटा भी था। लम्बे डग भरते हुए वह दौड़ लगाता, ऊँचे पेड़ों की डाली में कुर्ता कभी-कभी फँस जाता था। उसके एक जोड़ी कपड़े में पता नहीं कितने थान लगते हों? कपड़ा उसके शरीर का हिस्सा था। वह नहाता इसी तरह से था कि कपड़ा भी साफ हो जाए।

नहाकर वह बाहर आया। उसे अपने को पोंछना और कपड़े को सुखाना था। उसके सिर के पास की हवा की गति तेज़ थी। मैदान बड़ा नहीं था। बड़ा होता तो अपने को सुखाने वह दौड़ लगाता। पेड़ों के कारण खुली जगह कम थी। लम्बे डगवाला लड़का खड़े-खड़े ऊपर उछला तो उसका पूरा शरीर तेज़ हवा के दायरे में पहुँच गया। वह नीचे आता और फिर उछल जाता। जब नीचे आता तो उसके छींट का कुर्ता फूल जाता। पैजामा पीले रंग का था।

हवा से वह पुछा गया था। कपड़ा मोटा था। फिर भी सूख गया। अपने को सुखाने के व्यायाम में वह हाँफने लगा था।

लम्बे डगवाला लड़का दूर की बातचीत को सुन लेता था। पर सुनचुक्की की तरह पास की सूक्ष्म आवाज़ों को सुन नहीं पाता था। धरती की सूक्ष्म आवाज़ों से वह अपनी ऊँचाई के कारण और दूर हो जाता था।

चुप्पीवाली जगह के ऊपर आकाश का वातावरण भी चुप्पी का रहता। कई बार बोलते हुए पक्षी ऊपर से उड़ते तो चुप्पीवाली जगह को छोड़कर उड़ते थे।

आज के दिन लम्बे डगवाला लड़का कुछ देर से उठा। सूरज चढ़ आया था। नहाकर वह रोज़ की तरह उचकते हुए कपड़े सुखा रहा था। वह जब ऊपर जाता तो चुप्पी जगह की तरफ भी देखता। पहली बार उचका था तो चुप्पीवाली जगह हलचल विहीन दिखी। बरसात के दिनों में बादल चक्रवात के दबाव में चुप्पीवाली जगह पहुँच जाते थे। पर बरसते चुपचाप थे। बिजली भी बिना आवाज़ के कौंध जाती थी। उस तरफ हवा भी खानापूर्ति की तरह बहती थी। तीसरी बार जब वह आकाश की तरफ उछला तो उसने देखा कि चुप्पीवाली जगह से झुण्ड के झुण्ड पक्षी आकाश में आते और फिर नीचे चले जाते। एकबारगी वहाँ से शोर-सा उठता हुआ उसने सुना। चौथी बार उछला तो बोलू की टोली का हल्ला उसे सुनाई दिया। वह जान गया कि चुप्पी जगह की चुप्पी टूट गई है। वह खुशी से उछलने लगा। जबकि, उसके कपड़े सूख चुके थे। वह नाचते, कूदते चुप्पी जगह पहुँच गया। देखू ने ही पहले उसे आते देखा।

लम्बे डगवाला लड़का सुनचुक्की के पास गया। वह मुस्कराया। सुनचुक्की ने उसकी ऊँचाई को देखते हुए, अपनी सारी उत्सुकता को भुलाकर लम्बे डगवाले लड़के से कहा, “गौरैया के बच्चे को घोंसले में बैठा दो। बहुत सम्भालकर उठाना।” सुनचुक्की ने तब अपने ऊपर के पेड़ की तरफ इशारा किया। गौरैया अपने घोंसले के पास जाकर बैठ गई थी और चहक रही थी। लम्बे डगवाले लड़के ने घोंसले को आसानी से जान लिया। घोंसले में एक बच्चा और था। उसी के पास गिरे हुए बच्चे को सम्भालकर बैठा दिया।

सुनचुक्की उठकर खड़ी हो गई थी। वह लँगड़ा रही थी। हँस नहीं रही थी, मुस्करा रही थी। वह खुश थी। आज पहली बार उसे खुशी मिली थी।

बोलू को बिना बोले चलते हुए कुछ देर हो गई थी। उसके बोलकर चलने पर नज़र पड़ जाती थी कि वह इधर है, अब उधर है। चुपचाप चलने के कारण उसे देखना पड़ता कि किधर है। अचानक कभी इधर दिखता, कभी देर से दिखता। लेकिन तब भी एक डर था, अगर बोलू बैठे हुए देर तक चुप रहे तो कहीं ऐसा न हो कि उसे इसकी आदत पड़ जाए और चलकर बोलना शुरू कर दे।

बोलू की टोली में लम्बे डगवाला लड़का और सुन-चुक्की तो शामिल थे, सबसे छोटा कंकड़-पत्थर भी शामिल था। कंकड़-पत्थर बोलू के साथ चिपका रहता। और इस तरह भी रहता कि बोलू को पता नहीं चलता। दूर से और पास से भी यह लगता कि बोलू अकेले जा रहा है, पर पत्थर उसके साथ हमेशा होता।

बोलू जा रहा था। कूना मिल गई। उसने पूछा, "तुम अकेले कहाँ जा रहे हो?"

बोलू ने कहा, "मैं अकेला नहीं हूँ।" उसका आशय था कि कंकड़-पत्थर साथ है। पर कूना ने समझा बोलू का कहना है कि कूना भी तो है।

अब तीनों, अपने जाने-पहचाने बौना पहाड़ की तरफ जा रहे थे। इनके कदम अपने आप बौना पहाड़ की तरफ थे। यह पहले से तय नहीं था। कोई निश्चित काम न होने पर भी कोई काम निश्चित हो जाता था। बौना पहाड़ उनको आते देखता, जैसे बहुत खुश हो जाता और उनको भटकाकर किसी न किसी काम में लगा देता। जब वे पहाड़ पर चढ़ रहे थे तो उन्हें पानी का वह रास्ता दिख गया जिससे वे कंकड़-पत्थर के साथ बाहर निकलकर आ सके थे।

उसे देखते ही कूना ने खुश होकर कहा, "रास्ता मिल गया। इसी से हम तब आए थे।"

बोलू ने उत्साह से कहा, "चलो, अन्दर चलते हैं, और बूँद-बूँद टपकने की जगह को ढूँढें।"

बोलू उसके अन्दर घुस गया। पीछे कूना थी। कुछ दूर जाने के बाद तराशे कमरे के पहले, बाएँ हाथ की तरफ पानी की निकासी का एक रास्ता और दिखा। यह रास्ता बहुत चौड़ा था। यह पहले क्यों नहीं दिखा? असल में पहले निकलते समय बाहर से आ रहे उजाले को उन्होंने बाहर निकलने का लक्ष्य बनाया था। उसी को देखते हुए वे बाहर निकले थे और आजू-बाजू की तरफ ध्यान नहीं दिया था।

बोलू को शक हुआ। उसने कूना से कहा, "यह रास्ता बूँद-बूँद टपकनेवाली जगह को नहीं जाता होगा। पानी की बूँद की निकासी इतनी चौड़ी क्यों होगी?"

कूना ने कहा, "इसी रास्ते से जाते हैं। हो सकता है कोई दूसरा तराशा कमरा मिल जाए।"

बोलू, "हो सकता है।"

रास्ता पानी के कटाव से ही बना था। पहले इसमें पानी का तेज़ प्रवाह होता रहा, अब किसी कारण बन्द हो गया। और बूँद-बूँद टपकना बचा रहा। बाद में बूँद टपकना भी बन्द हो जाए या पहले जैसा प्रवाह फिर हो जाए। अब-तक रास्ता

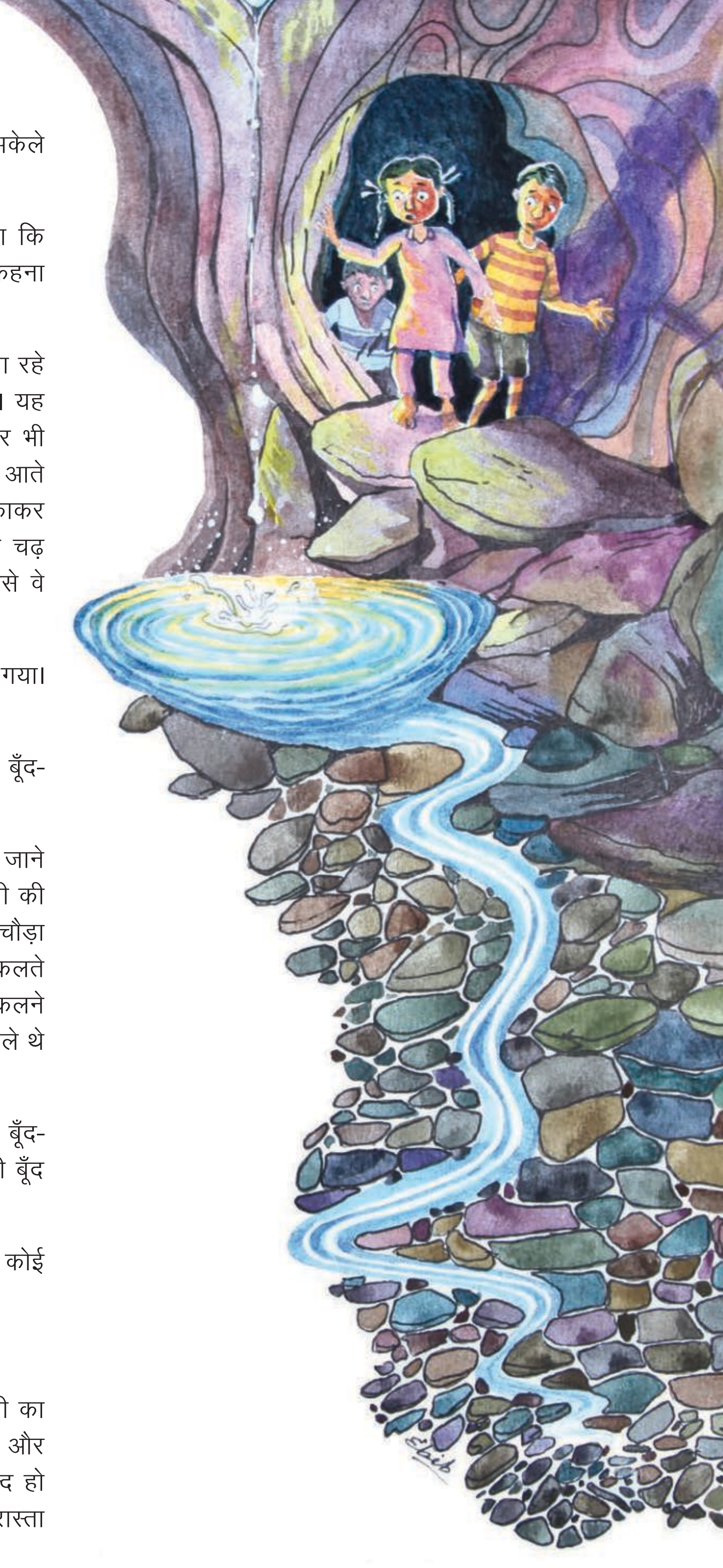

सूखा था। वे घुटने के बल चल रहे थे। आगे गीलापन था। उन्हें टपकने की आवाज़ भी आने लगी थी।

जहाँ पानी टपक रहा था, वे वहाँ पहुँच गए। यह जगह कुछ ऊँची और चौड़ी भी थी। नीचे पानी के कटाव से पत्थर में एक छोटा-सा कुण्ड बन गया था। कुण्ड में पानी भरा था। और इसी के ऊपर पानी टपक रहा था। जहाँ से पानी टपक रहा था वहाँ से थोड़ी रोशनी भी आ रही थी। रोशनी से ऊपर की बूँद चमकदार टपकती दिखती थी। बोलू और कूना दोनों खड़े थे। बूँद टपकने की छत को वे छूना चाहते थे, पर छत कुछ अधिक ऊँची थी। पानी टपकने की आवाज़ में गूँज थी। पत्थर की दीवाल में एक-दो छेद भी दिखे थे। शायद इन्हीं छिद्रों से तराशे कमरे में पानी टपकने की आवाज़ आती होगी।

वे लौटने लगे। वे तराशे कमरे में भी जाना चाहते थे। तराशे कमरे का रास्ता उन्होंने पकड़ा। और वे कमरे में आ गए। बोलू चौखट पत्थर के पास गया। चौखट पत्थर खाली दिख रहा था। पता नहीं क्यों बोलू के मन में आया कि कंकड़-पत्थर को अपनी जगह पर होना चाहिए।

बोलू ने चौखट पत्थर के ऊपर अपना दाहिना हाथ फैलाया। उसकी हथेली भी फैली थी कि पत्थर उसके शरीर पर कहीं चिपका हो, तो उसकी हथेली पर उतरकर आ जाए। कूना ने देखा कि कंकड़-पत्थर एक छोटे कीड़े की तरह खिसकते-चलते हुए या धीरे-धीरे लुढ़कते हुए उसकी हथेली पर आ गया। जैसे ही वह हथेली पर आया, सूर्य की रोशनी उसकी हथेली पर रखे कंकड़-पत्थर पर टिक गई। बोलू ने उसे चौखट पर लुढ़का दिया।

कूना के फ्रॉक में कंकड़-पत्थर के साथी कंकड़ गाँठ में बँधे रहते थे। कूना ने उन पत्थरों को भी उसी तरह जमा दिया जैसे पहले थे। पर कूना को बोलू का कंकड़-पत्थर को लौटा देना अच्छा नहीं लगा। कूना ने अपने पत्थरों को बेमन से रखा था। उसे यह भी लग रहा था कि बोलू जो करता है, ठीक करता है।

वे लौटने लगे। कुछ आगे जाकर कूना ने पलटकर फिर चौखट-पत्थर को देखा। उसके साथी कंकड़ तो दिख रहे थे, पर बीच का भारी कंकड़-पत्थर नहीं दिख रहा था।

“कहाँ चला गया?” कूना ने बोलू से कहा।

“क्या?” बोलू ने पूछा।

“तुम्हारा पत्थर नहीं दिख रहा है। मैं पास जाकर देखती हूँ।”

बोलू, “होगा कहीं। मैं चला।”

कूना बोली, “जाओ।”

वह चौखट-पत्थर के पास गई। बोलू का पत्थर वहाँ नहीं था। सबसे बड़ा सबूत कि सूर्य की उस पर पड़नेवाली किरण भी नहीं थी। उसने सोचा, बोलू का पत्थर नहीं अपने साथी पत्थरों को भी उठा ले। उसने उठाना तो चाहा पर नहीं उठाया। वह बोलू के पास दौड़कर चली गई।

पानी निकासी के रास्ते से बाहर आते ही वे लौटने में चार कदम ही गए होंगे कि कूना ने बोलू को रोका। उसने कहा, “अपन चार कदम ही आगे आए हैं। अब पीछे जाकर निकासी के रास्ते को फिर देखती हूँ।” वह दौड़ी। वह हैरान थी।

बोलू ने पूछा, “क्या हुआ?”

कूना बोली, “बोलू, रास्ता चला गया! नहीं है।”

बोलू बोला, “देखो वहीं होगा।”

कूना ने कहा, “आकर देखो। नहीं है।”

बोलू गया। आसपास देखा। रास्ता नहीं दिखा। लौटते समय ऐसा ही कुछ होता है। और वे लौट आते हैं।

जारी...

भैंस

अनिकेत यादव
पाँचवीं, धर्मपुर, उत्तर प्रदेश

भैंस का रंग है काला-काला
चेहरा इसका बड़ा दुलारा
पानी इसे बहुत सुहावे
कीचड़-मिट्टी औरो भावे
घास-भूसा इसका भोजन
पूछो मत यारो, इसका वज़न
रहना चाहे खुल्लम-खुल्ला
भाता इसे न हल्ला-गुल्ला
देती है यह मीठा दूध
माँगे कभी न दूध का सूद।

चित्र: संस्कृति ननावरे, पाँचवीं, प्रगत शिक्षण संस्थान फलटण, सतारा, महाराष्ट्र

जहाँ परीक्षा ना हो

अडवानी स्कूल अच्छा तो है मगर मैम और सर बहुत मारते हैं। और अडवानी स्कूल में कोई भी मैम और सर किसी भी बच्चे के दुख को नहीं समझते हैं। जैसे कि किसी भी बच्चे के पैर में चोट है या आँख कमज़ोर रहती है तो मैम इन बातों को नहीं समझती हैं। और अडवानी में परीक्षा होती है। लेकिन परीक्षा होने से बच्चे कुछ भी नहीं सीखते हैं। परीक्षा से अच्छा है कि हर स्कूल में आकलन हो क्योंकि परीक्षा से बच्चे कुछ भी नहीं सीखते हैं। और बीरगाँव में ऐसा स्कूल होना चाहिए जहाँ बच्चे अच्छे से सीखें और मैम बच्चों से प्यार से बात करें, और किसी भी बच्चे के पैर में चोट लग जाए तो मैम समझें। स्कूल में खेलकूद होना चाहिए और अगर बच्चों को कोई भी बात समझ में नहीं आती है तो डबल से समझाना चाहिए, और रट-रट के नहीं पढ़ाना चाहिए। और मैम किसी भी बच्चे को कप्तान भी न बनाएँ क्योंकि कप्तान बनाते हैं तो कप्तान बच्चों को चुप कराते हैं।

राधिका
शहीद नगर
रायपुर, छत्तीसगढ़

चित्र: तुषार श्रीवास्तव, सातवीं, डीपीएस वाराणासी, उ. प्र.

मेरा पन्ना

कहानी की कहानी

बात अभी पिछले दिनों की है। जब भी कोई खाली पीरियड होता या कोई शिक्षक अवकाश पर होता तो हमारे गुरूजी सभी बच्चों को पुस्तकालय कक्ष में एकत्रित कर लेते और अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाते और सभी को कहते रहते कि तुम भी कहानी सुनाओ। नहीं सुना सकते तो लिखकर लाओ और उसे पढ़कर सुनाओ। तब मैंने भी गुरूजी की ही सुनाई कहानी को लिखने का मन बनाया और एक दिन लिखने बैठ गया। उस दिन मैंने तीन कहानियाँ लिख दीं। मम्मी-पापा मुझे लिखते देख रहे थे। उन्हें लग रहा था मैं खूब लिख रहा हूँ तो अपने स्कूल का कार्य कर रहा हूँ। मैंने बताया भी नहीं। कहानी मेरी तीन पन्नों में थी। मैं बड़ा उत्साहित था। अब मैं गुरूजी को अपनी लिखी कहानी बताऊँगा और सबको सुनाऊँगा भी। मुझे बहुत ही अच्छा लग रहा था। जल्दी से कल हो और मैं स्कूल जाऊँ व गुरूजी को बताऊँ कि मैंने भी कहानी लिखी। शाम को मैंने अपने बस्ते में कॉपी के बीच कहानियों के पन्नों को सम्भालकर अलमारी के पास रख दिया। आज मुझे नींद नहीं आ रही थी। मन में बहुत सोच-विचार चल रहा था और पता नहीं कब मैं सो गया। सुबह उठकर सबसे पहले मैं अपने बस्ते के पास आया। अरे, ये क्या! मेरा बस्ता नीचे पड़ा था और कॉपियाँ बिखरी पड़ी थीं। कुछ कागज़ खाए हुए-से टुकड़े-टुकड़े पड़े थे। मैंने अपनी कहानियों को ढूँढा पर वो नहीं मिलीं। मेरी मम्मी ने अलमारी के पास ही हमारी बकरी को बाँध दिया था। शायद उसने ही यह सब किया होगा। मैंने मम्मी से शिकायत की कि आपने यहाँ बकरी क्यों बाँध दी? उन्होंने पूछा, “क्यों?” मैंने कहा, “उसने मेरी तीनों कहानियों को चबा लिया। उसने मेरी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया।”

दीपक रामेश्वर दाहोद्रे
सातवीं, शा. मा. विद्यालय
ठीबगाव बुजुर्ग
खरगोन, मध्य प्रदेश

चित्र: ग्यानवी जैन, दूसरी, सत्य साईं विद्या विहार, इन्दौर, मध्य प्रदेश

चित्र: शिवम नामदास, दूसरी, जिला परिषद स्कूल फलटण, सतारा, महाराष्ट्र

दो मूर्ख

सिमरन व सृजन
अज़ीम प्रेमजी स्कूल
धमतरी, छत्तीसगढ़

पहाड़ों के बीच एक गाँव था। गाँव के पास दो नदियाँ बहती थीं। असल में नदी एक ही थी लेकिन दो भागों में बँटी थी। गाँव से दो किलोमीटर दूर एक मन्दिर था। मन्दिर के पास दो घर थे। दोनों घर में एक-एक मूर्ख रहता था। एक बार गाँव में बहुत बारिश होने लगी। बारिश बन्द होने के बाद दोनों मूर्ख नदी के किनारे जाकर मज़ाक में एक-दूसरे को नदी में गिराने लगे। अचानक दोनों मूर्ख एक साथ नदी में गिर गए और चिल्लाने लगे। फिर दोनों एक जगह में आकर मिल गए और दोनों ने अपना मूर्खतापूर्ण काम फिर शुरू कर दिया।

जब मेहमान आते हैं...

एक दिन मेरी नानी आईं। मैं और मेरी माँ बहुत खुश थे। माँ ने खाने में अच्छी-अच्छी चीज़ें बनाईं। उस दिन मैं नानी के साथ खूब खेली और घूमने भी गई। उस दिन माँ ने पढ़ने के लिए भी नहीं कहा। मैंने सोचा, कि काश नानी हमेशा मेरे घर में रहतीं तो कितना अच्छा होता। माँ मुझे हमेशा पढ़ने के लिए भी नहीं बोलतीं। दो दिन बाद नानी वापस इलाहाबाद चली गईं। उन्होंने कहा कि वह दोबारा ज़रूर आएँगी। यह सुनकर मैं खुश हुई।

फिर एक दिन मेरे घर पर मेरे दादाजी के एक पुराने दोस्त बिना बताए आ गए। माँ मुझे पढ़ा रही थीं। मुझे लगा कि दादाजी के दोस्त अब खाना खाकर ही जाएँगे। मेरी माँ उन्हें खाना परोसने चली जातीं जिससे मेरी पढ़ाई में रुकावट आती और मुझे उनके पास जाकर नमस्ते भी करना पड़ता। मैं सोचती हूँ कि वो जल्दी चले जाएँ क्योंकि माँ और पिताजी काम कर-करके थक जाते हैं। जब दादाजी के दोस्त चले जाते हैं तो राहत मिलती है।

अस्मिता चन्द्रा
जिंगल बेल अकादमी
फैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश

चित्र: एन. अनन्या, बारह वर्ष, अदानी देव पब्लिक स्कूल, मुण्ड्रा, कच्छ, गुजरात

मौसम के बारे में

प्रियांशु

छठवीं, होली लाईट एकेडमी
देवास, मध्य प्रदेश

एक दिन मैं रविवार को पापा के साथ बाज़ार गया था तो अचानक तूफानी हवा चलने लगी। बादल गरजने लगे व बिजली कड़कने लगी और बारिश होने लगी। फिर हम एक अनजाने घर में रुके और फिर उस अनजाने घर से निकले तो हमारी बाइक खराब हो गई थी। पर फिर भी बारिश नहीं रुकी और फिर हम बाइक को खींचते-खींचते दुकान तक लाए। पर बारिश थी कि रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। फिर दुकान वाले ने बाइक ठीक करी और मौसी का घर पास था तो हम मौसी के घर गए और धीरे-धीरे शाम से रात होने लगी। रात हुई तो बिजली चली गई और जब बिजली आई और बारिश थम गई फिर हम अपने घर गए।

चित्र: हर्षित सरगर, सातवीं, ततौवापुरा, बैतूल, मध्य प्रदेश

सबा की बिल्ली भूलभुलैया में फँस गई है, क्या तुम सबा को अपनी बिल्ली तक पहुँचने में मदद कर सकते हो?

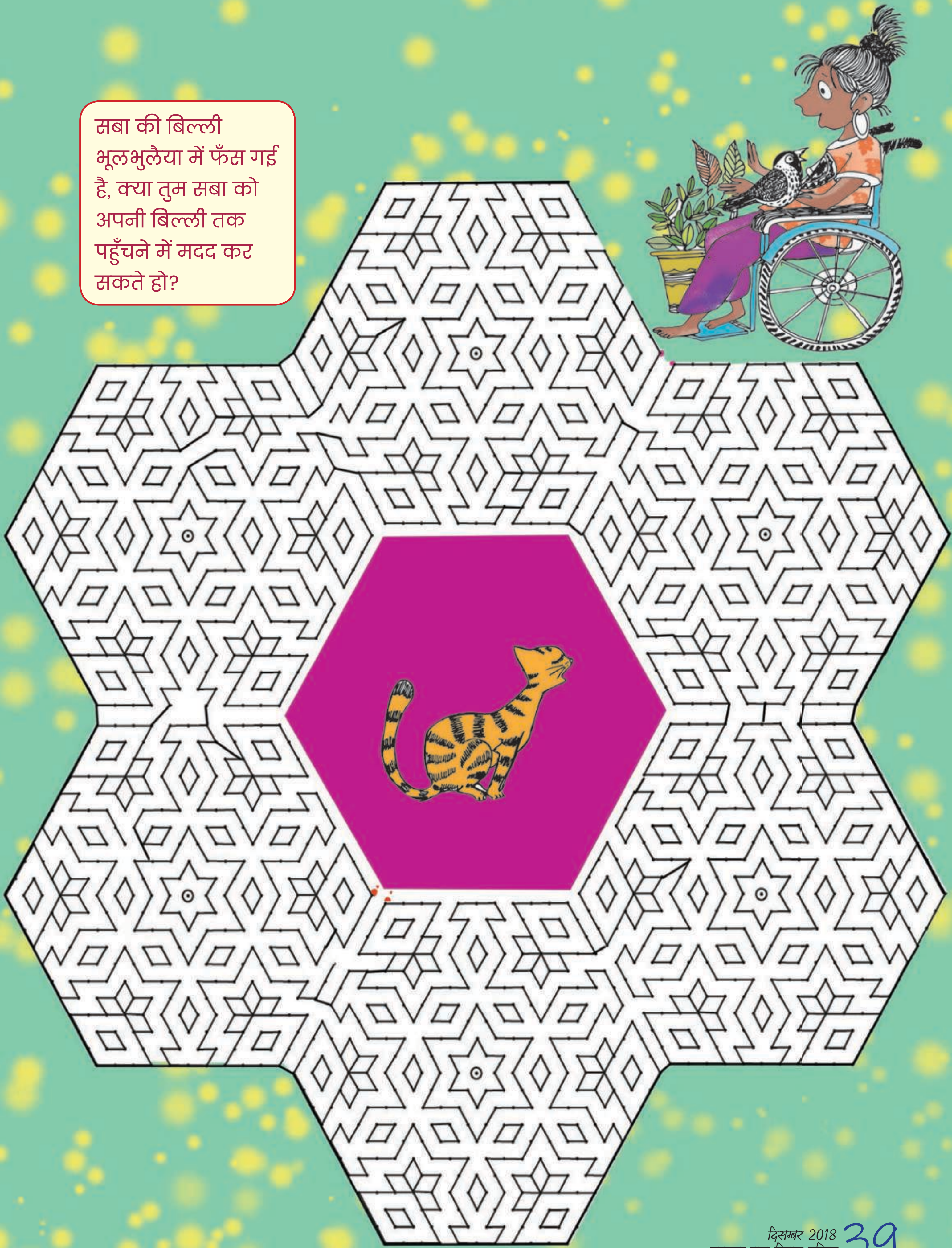

गौरैया और मनुष्य का साथ कैसे हुआ?

जहाँ-जहाँ मनुष्य रहते हैं, गौरैया भी रहती है। गौरैया पालतू नहीं है, लेकिन मनुष्य के आसपास रहती है। आमतौर पर देखी जानी वाली घरेलू गोरैया (पैसर डोमेस्टिकस) अण्टार्कटिका महाद्वीप के अलावा पृथ्वी के हर हिस्से में पाई जाती है। नन्ही-सी यह चिड़िया घरों के आसपास, गलियों में फुदकती हुई मनुष्यों द्वारा छोड़े/फेंके गए भोजन को चुगते हुए दिख जाएगी। इसका और हमारा साथ इतना पुराना है, कि प्राचीन साहित्य में भी यह नज़र आती है। गौरैया और मनुष्य के इस साथ का राज़ क्या है?

हाल में कुछ शोधकर्ताओं ने गौरैया के इस व्यवहार की छानबीन आनुवांशिक दृष्टि से की है। अपने अध्ययन के लिए उन्होंने यूरोप और मध्य-पूर्व में पाई जाने वाली घरेलू गौरैया और उनके कुछ रिश्तेदार - स्पैनिश गौरैया, इटेलियन गौरैया और बैक्ट्रिएनस गौरैया के खून की जाँच की। इनके खून से मिले डीएनए की तुलना की। ऐसा करने पर यह पता चला, कि घरेलू गौरैया और उसके सबसे करीबी रिश्तेदार बैक्ट्रिएनस गौरैया जो पूरी तरह से जंगली हैं, के दो गुणों में अन्तर है।

पहला अन्तर वह है जो घरेलू गौरैया को मण्ड (स्टार्च) पचाने की क्षमता प्रदान करता है। घरेलू गौरैया एमायलेस एंजाइम बना सकती हैं। यह एंजाइम मनुष्यों के अलावा उसके पालतू जानवर कुत्ते में भी पाया जाता है। इस एंजाइम की बदौलत घरेलू गौरैया अनाज के दानों को खाकर पचा सकती है। दूसरा अन्तर है खोपड़ी का आकार। यह माना जाता है कि खोपड़ी का आकार बड़ा हो तो जबड़े अनाज के ज़्यादा सख्त दानों को फोड़ पाते हैं। यानी कि मनुष्यों द्वारा उगाए गए सख्त बीजों को तोड़ने और खाने में ये गुण मदद करते हैं। मनुष्यों के आसपास रहने में ये गुण बहुत काम आते हैं।

यह भी पता चला है, कि गौरैया में यह गुण करीब 11,000 साल पहले दिखने लगे। यानी कि इसी समय घरेलू गौरैया बैक्ट्रिएनस गौरैया से अलग हुई थी। इसी समय मध्य-पूर्व में खेती की शुरुआत हुई थी। तो गौरैया और का मनुष्यों का साथ कुछ इस तरह बना।

स्रोत फीचर्स से साभार

माथापच्ची

1. क्या तुम दिए गए सभी अंकों व चिन्हों को केवल एक बार इस्तेमाल करते हुए एक सही समीकरण बना सकते हो?

2, 3, 4, 5, +, =

2. नीचे दो कुण्डली (स्पाइरल) आकार दिए गए हैं। दोनों में से कोई एक कुण्डली दो अलग-अलग हिस्सों से मिलकर बनी है। बताओ तो ज़रा कौन-सी कुण्डली है वो?

3. दोनों में से किस केतली में ज़्यादा चाय आएगी?

4. एक फ्लैट में एक बुज़ुर्ग व्यक्ति अकेले रहते थे। बुज़ुर्ग होने के कारण वे ज़रूरत की सभी चीज़ें घर पर ही मँगा लेते थे। शुक्रवार की दोपहर जब पोस्टमैन डाक लेकर आया तो उसे कुछ शक हुआ। उसने चाबी के छेद में झाँककर देखा तो फर्श पर उनकी लाश दिखाई दी। उसने तुरन्त पुलिस को बुलाया। पुलिस को घर के बाहर दूध के कुछ पैकेट, मंगलवार का अखबार और कुछ गिफ्ट मिले। पुलिस को तुरन्त ही पता चल गया कि कातिल कौन है और उन्होंने उसे गिरफ्तार कर लिया। क्या तुम्हें भी पता चल गया कि कातिल कौन है?

फटाफट बताओ कि

हवा में ही नींव खोदी,
हवा में दरवाज़ा
झूलता-सा महल
बनाया, नन्हा-सा राजा

(मकड़ी)

परिवार हरा हम भी हरे,
एक थैली में तीन-चार भरे

(मटर)

लोहे की एक छोटी रानी,
आँखों से है वह कानी
जिसके पास वह जाती है,
बिछड़े हुए मिलाती है

(सुई)

वह क्या है जिसकी गर्दन
तो होती है लेकिन सर नहीं
होता?

(कमीज़)

1		4		7			
	6					1	2
				3	7		
7	4		6				1
4	8		7				5
				8	4		
		6	8		5		
5				2		6	

सुडोकू-14

दिए हुए बॉक्स में 1 से 8 तक के अंक भरना। आसान लग रहा है न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने हैं। अंक भरते समय हमें यह ध्यान रखना है कि 1 से 8 तक के अंक एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराए न जाएँ। साथ ही साथ, बॉक्स में तुमको आठ डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि उन डब्बों में भी 1 से 8 तक के अंक दुबारा न आएँ। कठिन नहीं है, करके तो देखो। जवाब तुमको अगले अंक में मिल जाएगा।

माथापच्ची जवाब

भूलभुलैया का जवाब

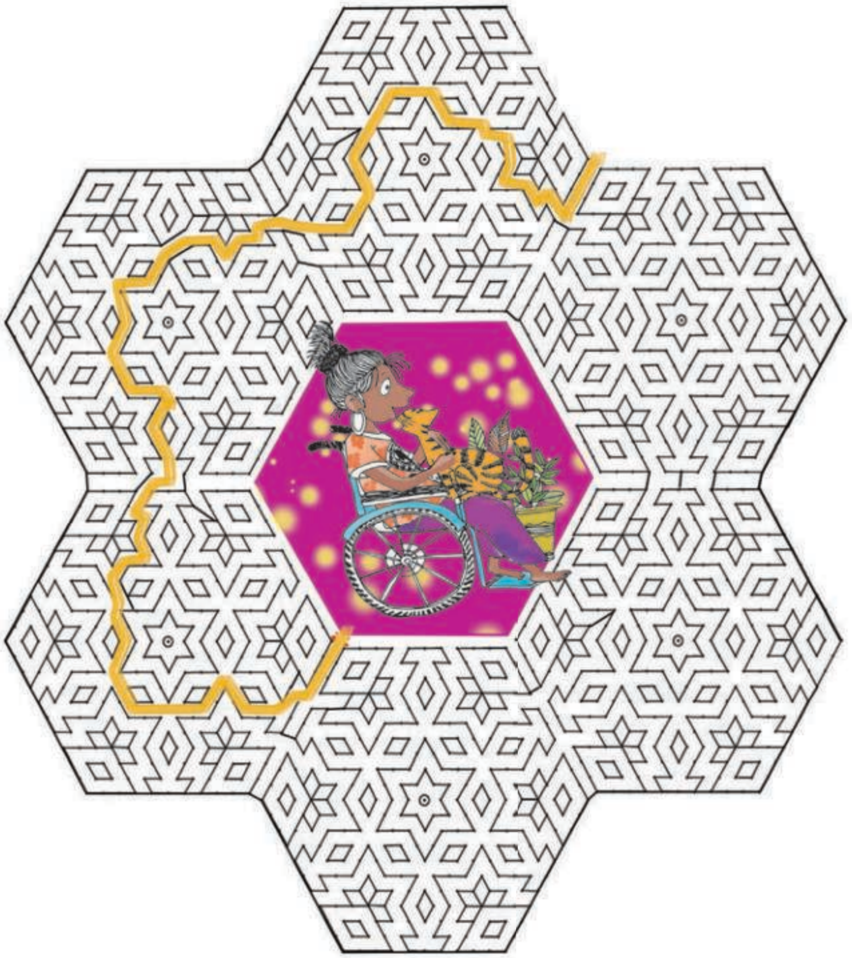

1. 4 + 5 = 3^2

2.

3. ध्यान से देखो दूसरी वाली केतली की नली नीचे है जबकि पहली वाली केतली की नली बीच में है। जब केतली में चाय की मात्रा नली के मुँह से ज़्यादा होती है तो नली से चाय बाहर आने लगती है। इसका मतलब हुआ कि दूसरी वाली केतली को केवल आधा ही भर सकते हैं। इसलिए पहली केतली में ज़्यादा चाय आएगी।

4. कातिल अखबार वाला है। पुलिस को मिले सामान में मंगलवार का अखबार था उसके बाद के दिनों के नहीं। जाहिर है उसने मंगलवार के बाद से वहाँ अखबार डालना बन्द कर दिया था क्योंकि वह जानता था कि अखबार पढ़ने के लिए वहाँ कोई नहीं है।

नवम्बर की चित्र पहेली का जवाब

सुडोकू-13 का जवाब

1	5	7	2	3	8	4	6
6	4	8	3	7	2	5	1
2	1	3	5	4	6	7	8
4	7	6	8	1	5	2	3
5	8	1	4	6	7	3	2
7	3	2	6	5	1	8	4
8	6	4	7	2	3	1	5
3	2	5	1	8	4	6	7

चित्रपहेली डिज़ाइन: दिलीप चिंचालकर

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20

छोटा बच्चा

जशनप्रीत सिंह
तीसरी, डीपीएस लुधियाना, पंजाब

मैं एक छोटा बच्चा हूँ
बड़ी शरारत करता हूँ
अच्छा लगता है मुझे मीठा
हो चाहे बर्फी या हो पतीसा
खाता हूँ मैं रोज़ मलाई
आती है फिर मुझे अँगड़ाई
जाता हूँ फिर मैं सो
मीठे-मीठे सपनों में खो
आँखें मेरी हरी-हरी
जैसे उनमें शरारत भरी

चित्र: मनराज मीणा, ग्यारह वर्ष, सवाई माधोपुर, राजस्थान

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म. प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इण्डस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: विनता विश्वनाथन